# मुझे कैसे सोचना चाहिए?

अति महत्वपूर्ण प्रश्न

आर.सी. स्प्रोल

# मुझे कैसे सोचना चाहिए?

अति महत्वपूर्ण प्रश्नों की पुस्तिकाएँ निश्चित् मसीही सच्चाइयों के विषय में एक सहज परिचय प्रदान करती हैं। इस बढ़ते हुए संग्रह में निम्न शीर्षक सम्मिलित हैं:

यीशु कौन है?

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

क्या मैं परमेश्वर की इच्छा को जान सकता हूँ?

मुझे इस संसार में कैसे जीना चाहिए?

नया जन्म होने का अर्थ क्या है?

क्या मुझे निश्चय हो सकता है कि मैं उद्धार पाया हुआ हूँ?

विश्वास क्या है?

मैं अपने दोषबोध के साथ क्या कर सकता हूँ?

त्रिएकता क्या है?

श्रृंखला की शेष पुस्तकों के लिए कृपया जाएँ:

*https://margsatyajeevan.com*

अप्र

# मुझे कैसे सोचना चाहिए?

आर.सी. स्प्रोल

मार्ग सत्य जीवन
ख्रीष्टीय विचारों का संग्रह

Originally published in English under the title:
*How Should I Think?*
© 2025 by the R.C. Sproul Trust

Published by Ligonier Ministries
421 Ligonier Court, Sanford, FL 32771, U.S.A.
Ligonier.org

Translated by permission. All rights reserved.

First Hindi Translation and Print 2026
This Hindi edition is issued in arrangement with Ligonier Ministries, USA.
Translated and published in India by 'Marg Satya Jeevan'
for distribution and sales worldwide.
*'Marg Satya Jeevan' is a brand of Hodalzo Services Pvt. Ltd. company which exists to print, publish & distribute resources for the Church in India.*

Hindi ISBN: 978-81-991107-9-3 (Paperback)
Hindi ISBN: 978-81-991107-6-2 (eBook)

प्रथम हिन्दी अनुवाद एवं संस्करण 2026
'मुझे कैसे सोचना चाहिए?' पुस्तक का हिन्दी संस्करण लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के प्रायोजन से 'मार्ग सत्य जीवन' द्वारा अनुवादित एवं प्रकाशित किया गया है।

अधिक संसाधनों के लिए *मार्ग सत्य जीवन* की वेबसाइट पर जाएँ:

*https://margsatyajeevan.com*

# विषय सूची


**एक** मन क्या है? . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 1

**दो** मन और शरीर . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 11

**तीन** आप कैसे जानते हैं? . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 19

**चार** मन और चेतना . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 29

**पाँच** ज्ञान के दो मार्ग . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 39

**छह** तर्क के नियम . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 49

**सात** तर्कसंगतता और तर्कवाद . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 61

**आठ** विश्वास और तर्क . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 71

**नौ** दो प्रकार के अस्तित्व . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 81

**दस** अस्तित्व और परात्परता . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 89

**ग्यारह** तार्किक निष्कर्ष . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 97

**बारह** मन और पवित्रशास्त्र . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . 107

अध्याय एक

# मन क्या है?

# *What Is the Mind?*

एक दिन मैं भोजन कर रहा था और मेरी थाली में एक तरबूज़ (कलिंदा) था। मैं इस तरबूज़ के महत्व के विषय में गम्भीरता से विचार कर रहा था क्योंकि मैं अच्छे स्वास्थ्य के लिए प्रोटीन, वसा और कार्बोहाइड्रेट को सन्तुलित करने वाले आहार का सेवन कर रहा था। मैं विचार कर रहा था, “यह एक कार्बोहाइड्रेट है।” मैं इसे मात्र एक फल के रूप में मानता था, परन्तु अब मुझे समझ में आया कि यह एक कार्बोहाइड्रेट है और मुझे यह निर्धारित करना था कि क्या यह एक लाभदायक कार्बोहाइड्रेट है या लाभहीन कार्बोहाइड्रेट। मैंने पाया कि यह एक लाभदायक कार्बोहाइड्रेट था, जिसका तत्त्व रक्तप्रवाह में प्रवेश करके फलशर्करा *(fructose)* में परिवर्तित हो जाएगा। जब मैं तरबूज़

की बहुमूल्यता का यह विश्लेषण कर रहा था, तो मैंने सोचा कि वास्तव में तरबूज़ का वह टुकड़ा क्या विचार कर रहा होगा क्योंकि अब यह मेरा भोजन बनने वाला था। निस्सन्देह, हम इस प्रसंग पर ठट्टा कर सकते हैं क्योंकि हमारी प्रथम धारणा के अनुसार तरबूज़ विचार कर नहीं सकते। वे पशु नहीं हैं; वे पौधे हैं। और ऐसे बहुत कम ही लोग होंगे, जो यह कल्पना करेंगे कि तरबूज़ का यह टुकड़ा अपने खाने वाले के विषय में कुछ विचार भी कर सकता है।

तथापि, दर्शनशास्त्र के इतिहास में, हर कोई इस धारणा से सहमत नहीं है कि तरबूज़ विचार नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, तर्कवादी दार्शनिक गॉटफ्रायड लेबनिज़ *(Gottfried Leibniz)* ने एक जटिल प्रणाली विकसित की जिसे चिदणुविज्ञान *(Monadology)* कहा जाता है। उनका मानना था कि पदार्थ के सभी रूपों में कुछ क्षमता होती है जिसे हम "विचार करना" कहते हैं, भले ही यह विचार "छोटे विचारों" *(petite perceptions)* की श्रेणी में आती हो। किन्तु, गॉटफ्रायड के छोटे विचारों के सिद्धान्त ने बौद्धिक जगत पर उतना प्रभाव नहीं डाला। और जैसा कि मैंने कहा, तब से बहुत कम ही लोगों ने पौधों के विचार करने की सम्भावना पर विचार किया है।

तो हम वास्तव में कैसे जानते हैं कि पौधे विचार कर सकते हैं या नहीं? हम कैसे जानते हैं कि पशु विचार कर सकते हैं या नहीं? जब मैं अपने कुत्ते से कुछ कहता हूँ, तो उसकी सामान्य प्रतिक्रिया यह होती है कि वह अपना सिर एक ओर झुका लेता है और अचरज भरी दृष्टि से मेरी ओर देखता रहता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि हमारे पालतू पशु और दूसरे पशुओं में

विचार करने की कुछ क्षमता होती है; यद्यपि, वैज्ञानिक जगत का सामान्य आकलन यह है कि ये पशु वास्तव में विचार नहीं करते हैं। वे तो केवल बाहरी उत्तेजनाओं पर एक बल द्वारा प्रतिक्रिया करते हैं जिसे कुछ सीमा तक सहज-ज्ञान या स्वाभाविक प्रवृति कहा जाता है।

तो स्वाभाविक प्रवृत्ति और विचार में क्या अन्तर है? शोधकर्ताओं ने इस प्रश्न की जांच की है और लोग विभिन्न निष्कर्षों पर पहुंचे हैं। एक ओर, कुछ लोग कहते हैं कि जब हम कहते हैं कि पशु जो करते हैं वह "मात्र स्वाभाविक प्रवृत्ति" है और "विचार" नहीं, तो यह मानव प्रजाति के एक निश्चित अहंकार को दर्शाता है; हमारा मानना है कि हम ही एकमात्र ऐसे प्राणी हैं जिसमें विवेकपूर्ण विचार करने की योग्यता अथवा क्षमता है। दूसरी ओर, कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि पशुओं में विचार करने की क्षमता होती है, यद्यपि सम्भवतः मनुष्यों के समान उन्नत स्तर पर नहीं।

फिर कुछ लोग कहते हैं कि जिसे हम मनुष्य के रूप में "विचार करना" कहते हैं, वह स्वाभाविक प्रवृत्ति से अधिक कुछ नहीं है, यह उत्तेजनाओं के प्रति एक जैव रासायनिक प्रतिक्रिया से अधिक कुछ नहीं है। यह इतिहास के सबसे पुराने दार्शनिक प्रश्नों में से एक को फिर से पूछता है जिस पर बहुत सारे विचारकों ने विचार-मंथन किया है और वे प्रश्न हैं: मन क्या है?

एक ईश्वरविज्ञानी इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए शब्दों का खेल खेलता था। वह पूछता था, "मन क्या है?" और वह उत्तर देता था, "यह कोई पदार्थ नहीं।" और फिर जब कोई पूछता था, "अच्छा, पदार्थ क्या है?" तो वह

कहता था, “कुछ नहीं।” वह यह समझाने का प्रयास कर रहा था कि यद्यपि हम मानते हैं कि मन, जो किसी पदार्थ और भौतिक वस्तु जैसे मस्तिष्क से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, जिसे हम “मन” कहते हैं, उसे मस्तिष्क के साथ पूर्ण रूप से समान नहीं माना जा सकता। मस्तिष्क मन का आसन हो सकता है और यह वह अंग हो सकता है जिसका उपयोग शरीर विचार करने के लिए करता है, परन्तु विचार करने वाले भौतिक अंग और स्वयं विचार करने के मध्य एक अन्तर है।

और इसलिए हम यह प्रश्न पूछते हैं: विचार क्या है? क्या विचार मात्र एक जैव रासायनिक विद्युतीय उत्तेजना है जिसे शुद्ध भौतिक श्रेणियों में मापा जा सकता है, अथवा क्या इस वस्तु से सम्बन्धित कुछ आध्यात्मिक और गैर-भौतिक विषय भी है जो मनुष्य के रूप में हमारे अस्तित्व के लिए इतनी आधारभूत है? हम जानते हैं कि हम ऐसे लोग हैं जो सोचते हैं और जिनके पास हमारे 'मन' में विचार होते हैं। हमारे पास अपने मस्तिष्क में उस विचार करने के स्रोत का स्थान निर्धारण करने की प्रवृत्ति है। हम यह भी जानते हैं कि मस्तिष्क को होने वाली शारीरिक क्षति विचारों के स्वरूप को परिवर्तित कर सकती हैं, जैसा कि मस्तिष्क में होने वाला रासायनिक असन्तुलन।

हम मानसिक अस्वस्थता के विषय में अन्तर करते हैं, जहाँ लोग तर्कसंगत ढंग से विचार करने की क्षमता को खो देते हैं। और फिर भी, जो लोग मानसिक रूप से पूरी तरह स्वस्थ माने जाते हैं, वे भी कभी-कभी तर्कहीन ढंग से विचार करते हैं और अतएव हम बहुधा आश्चर्य करते हैं कि मानसिक

अस्वस्थता और मानसिक स्वस्थता अथवा बुद्धिमानी और विक्षिप्तता के मध्य स्थित वह रेखा कहाँ है। प्रायः यह कहा जाता है कि प्रतिभा और विक्षिप्तता के मध्य एक पतली रेखा होती है, उन लोगों के मध्य जो असाधारण गम्भीरता से विचार करते हैं और जो किसी प्रकार विक्षिप्तता की सीमा पार कर जाते हैं। हमने विश्व के इतिहास के कुछ सबसे प्रसिद्ध विचारकों में विक्षिप्तता की असामान्य रूप से उच्च दर देखी है। प्रतिभा और विक्षिप्तता के मध्य की यह वह पतली रेखा है जिसमें हम कभी-कभी लोगों को आगे-पीछे फिसलते हुए देखते हैं।

मन क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है। हमारे जागते हुए क्या कभी ऐसा कोई समय होता है जब हम सोच नहीं रहे होते हैं? हो सकता है कि हम किसी गहरे तार्किक क्रम अथवा विश्लेषण में डूबे न हों? हम दिवास्वप्न *(daydreaming)* देख रहे होते हैं, परन्तु दिवास्वप्न देखते समय भी हमारे मन में कई विचार आते रहते हैं। हमारे मन में ऐसे विचार आते हैं जिनके विषय में हम जानते हैं। हम चेतना की स्थिति में होते हैं। परन्तु फिर हम सोते समय भी विचार करने की घटना का अनुभव करते हैं, जब कभी-कभी विचारों की श्रृंखला अथवा चेतना की धारा कुछ असामान्य और विचित्र मोड़ लेती है। हम सभी ने कभी ना कभी भारी नींद में सोते हुए दुःस्वप्न देखने का डरावना अनुभव किया है।

ये अनुभव इस बात को समझने की कठिनाई को कई गुना बढ़ा देते हैं

कि मन का होना और विचार करना क्या होता है। अब, एक मसीही होने के रूप में हमारे महत्त्व के लिए, हमें यह समझना होगा कि मूल विषय यह है कि पवित्रशास्त्र यह मानता है कि हमारी मानवजाति में विचार करने की क्षमता अन्तर्निहित है। और पवित्रशास्त्र का दावा यह है कि हम एक नैतिक प्राणी हैं।

नैतिक प्राणी होने के लिए, व्यक्ति के पास किसी नैतिक मानक के अनुरूप या उसके विपरीत व्यवहार करने की क्षमता होनी चाहिए। और पवित्रशास्त्र में दिया गया मानक परमेश्वर की व्यवस्था है। बाइबल का परमेश्वर एक ऐसा परमेश्वर है जो हमें उसकी व्यवस्था के प्रति हमारी आज्ञाकारिता या अवज्ञा के प्रति उत्तरदायी ठहराता है। एक ऐसा प्राणी होना जो नैतिक रूप से अपने व्यवहार के प्रति उत्तरदायी होता है, एक नैतिक प्राणी होना है।

नैतिक प्राणी होने के लिए और क्या चाहिए? हमने कलीसियाई इतिहास में इस पर बारम्बार विचार किया है। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नैतिक प्राणी होने के लिए एक आवश्यक अनुबन्ध 'इच्छाशक्ति' का होना है। अर्थात् नैतिक प्राणियों को इच्छाशक्ति वहन करने वाले प्राणी होना चाहिए। उनके पास चुनाव करने, निर्णय लेने की शक्ति, क्षमता और सामर्थ्य होनी चाहिए। हम ऐसे प्राणी हैं जिनके पास इच्छाशक्ति है।

फिर हम और भी अधिक समस्यात्मक प्रश्न पूछते हैं, इच्छाशक्ति क्या है? जोनाथन एडवर्ड्स *(Jonathan Edwards)*, जिन्होंने मुझे लगता है कि मानव इच्छाशक्ति की प्रकृति और कार्य के इस प्रश्न से निपटने वाली सबसे

महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है, *द फ्रीडम ऑफ द विल (The Freedom of the Will)*, ने एक बार इच्छाशक्ति को सरल शब्दों में परिभाषित किया था। उन्होंने कहा था, "इच्छाशक्ति मन का चुनाव है।" किसी व्यक्ति को अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करने के लिए, नैतिक प्रकार का चुनाव करने के लिए, किसी प्रकार की जागरूकता की स्थिति में सक्रिय होना चाहिए। जब आप अचेतन अवस्था में होते हैं तो आप जो करते हैं, वह ऐसा कुछ भी नहीं होता है जिसे हम सामान्य रूप से नैतिक प्रकृति का मान सके। हम जानते हैं कि जब हमारे शारीरिक कार्यों का प्रश्न आता है, तो हम उन कार्यों के मध्य अन्तर करते हैं जो स्वैच्छिक हैं और जो अनैच्छिक हैं। हम हर सेकेण्ड अपने हृदय को धड़कने और रक्त को संचार प्रणाली में पहुँचाने का चुनाव नहीं करते हैं। हृदय एक अनैच्छिक अंग के रूप में धड़कता है। हम इसे इसका कार्य करने देने के लिए सचेत रूप से निर्णय नहीं लेते हैं।

परन्तु नैतिक निर्णय लेने के लिए किसी प्रकार की चेतना, नैतिक विषयों अथवा विकल्पों की समझ की आवश्यकता होती है जिससे मन हमारे द्वारा किए जाने वाले चुनावों में घनिष्ठता से संलग्न हो। मसीही होने के नाते, अथवा मनुष्य होने के नाते, हम यह नहीं मान सकते कि हमारे नैतिक निर्णय, हमारी नैतिक प्रतिक्रियाएँ, बिना सोचे-समझे किए गए कार्य हैं; इसके विपरीत, हमारे कार्य हमारे द्वारा किए गए चुनावों से उत्पन्न होते हैं, जो हमारे विचार करने के द्वारा सूचित होते हैं और हमारे मन के द्वारा निर्मित होते हैं। पवित्रशास्त्र हमें मन को नवीनीकृत करने के लिए प्रोत्साहित करता है जिससे हम उन श्रेणियों

में विचार करना आरम्भ कर दें जिनसे परमेश्वर प्रसन्न होता है, कि हमारे विचार हमारे चुनावों को प्रभावित करेंगे और कि हमारे चुनाव परमेश्वर की व्यवस्था के अनुरूप होंगे न कि उनकी अवज्ञा के अनुरूप। मसीही जीवन के लिए मन अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

एक विपरीत दृष्टिकोण जो अधिक से अधिक लोकप्रिय हो रहा है वह है भौतिक नियतिवाद। बीसवीं शताब्दी में, मनोवैज्ञानिक बी.एफ. स्किनर *(B.F. Skinner)* ने यह निष्कर्ष निकाला कि हमारी सभी प्रतिक्रियाएँ न केवल हमारे पर्यावरण द्वारा किन्तु हमारी शारीरिक बनावट द्वारा भी निर्धारित होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में, लुदविग फ्यूअरबाक *(Ludwig Feuerbach)* यह कहने के लिए प्रसिद्ध थे, "आप वही हैं जो आप खाते हैं," उन्होंने कहा कि लोग जो भी भोजन करते हैं उसका उनके जैव रसायन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उनका जैव रसायन उनके व्यवहार को निर्धारित करता है। और हमारे न्यायालयों में, हम आश्चर्य करते हैं कि क्या लोगों को उनके व्यवहार के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, क्योंकि यदि हर निर्णय किसी के पर्यावरण या जैव रासायनिक बनावट के द्वारा निर्धारित होता है, तो फिर किसी को उसके कार्यों के लिए कैसे उत्तरदायी ठहराया जा सकता है?

हम उन लोगों से क्या कह सकते हैं जो स्किनर की भांति तर्क देते हैं कि हम जो कुछ भी विचार करते हैं वह भौतिक कारणों से नियंत्रित और निर्धारित होता है? इस प्रकार का तर्क अपने आप में ही दुर्बल हो जाता है। उदाहरण

के लिए, स्किनर जो कुछ भी मन की प्रकृति और इच्छाशक्ति की प्रकृति के विषय में कहते हैं, वह स्वयं स्किनर की जैव रासायनिक संरचना और उनकी पृष्ठभूमि के द्वारा निर्धारित होता है। और इसलिए उनके विचारों में किसी और के विचारों से अधिक विश्वसनीयता नहीं है। उनका सिद्धान्त विचार करने की क्रिया से ही तार्किकता को समाप्त कर देता है।

आगामी अध्यायों में हम और भी देखेंगे कि मसीही मन होने का क्या अर्थ है और मसीही जीवन में मन किस घनिष्ठता से संलग्न है।

अध्याय दो

# मन और शरीर

## *Mind and Body*

मनुष्य के रूप में नई सीमाओं के अन्वेषण के प्रति हमारी रुचि सदैव रही है। अतीत की कुछ सबसे रोमांचक साहसिक कहानियाँ ऐसे लोगों के विषय में हैं जिन्होंने इस ग्रह के नए क्षेत्रों का पता लगाने के लिए अपने जीवन और शरीर को जोखिम में डाला। आज, हम नई सीमा के विषय में भिन्न प्रकार से बात करते हैं। कुछ लोग वायु-मंडल को हमारे समय की प्रमुख सीमा मानते हैं। अन्य लोग कह रहे हैं कि महासागर पूर्ण रूप से एक नई सीमा है क्योंकि हमारे पास अभी उसकी गहराई का ठिकाना लगाने की जो तकनीक उपलब्ध है, वह शुरुआती चरणों में हैं। परन्तु अन्य वैज्ञानिक तर्क देते हैं कि हमारे समय की सबसे बड़ी और सबसे महत्वपूर्ण सीमा मानव मन है।

उन कई विधियों के विषय में सोचें जिनसे मन हमारे द्वारा सुने गए हर वचन, हमारे द्वारा देखे गए हर दृश्य, हमारे द्वारा अनुभव की गई हर अनुभूति और मस्तिष्क में संग्रहीत सभी तथ्यों को अभिलेख करता है।

पेशेवर खिलाड़ियों और विश्वस्तरीय संगीत-गोष्ठी के पियानोवादकों पर अध्ययन किए गए। एक मिडफील्डर खिलाड़ी को मध्य-बिंदु से आकस्मिक रूप से गेंद झपटने से लेकर, अगले खिलाड़ी को गेंद पास करने के लिए पीछे हटने, बचावपक्ष को समझने, विपक्षी खिलाड़ी को देखने, अपना पैर उठाने, अपना पैर पीछे ले जाने, उसे आगे लाने और गेंद पर प्रहार करने तक अनगिनत निर्णय लेने होते हैं। ये सभी कार्य कुछ सेकंड की कार्रवाई में घटित होती हैं।

विश्व स्तरीय पियानो वादकों का भी अध्ययन किया गया। ऐसा लगता है कि उनकी उंगलियाँ पियानो से खेलती हैं, जो संगीत के कठिन पाठ्यांशों को आश्चर्यजनक गति और सटीकता के साथ बजाते हैं। और इस मस्तिष्क अनुसंधान में विशेषज्ञों ने पाया कि वास्तविक शारीरिक परिवर्तन मस्तिष्क में, अन्तर्ग्रथन में, मस्तिष्क के संयोजित ऊतक में घटित होते हैं, जो दोहराव के कारण होते हैं। खिलाड़ी “मांसपेशियों की स्मृति” के विषय में बात करते हैं। परन्तु स्मृति तो मस्तिष्क में उपस्थित होती है।

जब कोई किसी महान क्रिकेटर से पूछता है, “आपने वह शानदार शॉट कैसे मारा?” तो वह उत्तर दे सकता है: “वास्तव में, अभ्यास के समय मैं आनेवाली गेंद को ध्यान से देखता हूँ और अपने मन से सभी बाधाओं को दूर कर देता हूँ – गेंदबाज़ के फेंके जाने वाली द्रुतगामी गेंद का भय, मेरे पूर्व मैचों की विफलता, घरेलू दर्शकों के सन्मुख खेलने का दबाव इत्यादि – और

फिर शॉट मारने से पहले, मैं उस प्रकार के शॉट की कल्पना करता हूँ जिसे मैं मारना चाहता हूँ और फिर मैं अपना बल्ला घूमा देता हूँ।" महान क्रिकेटर अपने मन में बने उस जगत के विषय में बात करते हैं, जहाँ उन्हें एकाएक गेंद बहुत बड़ी दिखने लगती है, सीमारेखा एकदम समीप दिखने लगती हैं, विजयी ट्रॉफी दस फ़ीट चौड़ी दिखने लगती है और उनके पास ऐसा प्रत्योक्षकरण होता है जो क्रिकेट खेलने के लिए किसी प्रकार के पूर्वी रहस्यवाद, किसी ज़ेन बौद्ध दृष्टिकोण जैसा लगता है। वे आपको सम्मति देते हैं कि आप अपने दिमाग से नकारात्मक विचारों को निकाल दें और सकारात्मक विचार की शक्ति को अपनाएँ।

यदि आप अनुभवहीन क्रिकेटर हैं, तो हो सकता है कि आपने अपने बल्ले को अपने कंधे पर रखकर पूरे मैदान का निरीक्षण किया होगा और अपनी क्रीज और सीमारेखा के मध्य नियुक्त ग्यारह खिलाड़ियों का सामना किया होगा। और सम्भवतया अपना बल्ला घुमाने से पहले आपने जो आखिरी विषय सोचा होगा, वह था, "गेंद हवा में ही किसी क्षेत्ररक्षक के हाथ में न चली जाए।" और तो फिर क्या हुआ? आपने गेंद को हवा में ही मारना आरम्भ कर दिया। क्यों? क्योंकि आपने जो लंबा शॉट मारा है, वह एक ऐसा शॉट है जिसे आप मारना जानते हैं। आपका मस्तिष्क जानता है कि उस शॉट को कैसे खेलना है और आपने अपने सम्पूर्ण मन से उस पर ध्यान दिया। परन्तु लोग कहते हैं कि यह नकारात्मक कल्पना है।

क्या यह किसी प्रकार का रहस्यवाद है? नहीं। वैज्ञानिक समझते हैं कि यह एक शारीरिक आयाम है जो शारीरिक गतिविधि से सम्बन्धित है, जो मस्तिष्क और शारीरिक प्रतिक्रियाओं को एक-साथ जोड़ता है।

अब इन वस्तुओं का मसीही मन से कोई विशेष रूप से लेना-देना नहीं है, अतिरिक्त इसके कि हम मसीही होने के नाते पीछे हटकर आश्चर्य से देख सकते हैं कि कितने विस्मयकारी और अद्भुत रीति से हमारा निर्माण हुआ है। परमेश्वर ने अपने प्राणियों को मस्तिष्क के रूप में कितना बड़ा संसाधन दिया है। अब तक हमने शारीरिक सम्बन्धों को देखा है, क्योंकि हम केवल विचारक के रूप में नहीं रहते हैं। हम फुटबॉल खेलते हैं, हम क्रिकेट खेलते हैं, हम पियानो बजाते हैं, हम सड़क पार करते हैं, हम साइकिल चलाते हैं; हम हर समय किसी न किसी शारीरिक गतिविधि में व्यस्त रहते हैं क्योंकि न केवल हमारे पास एक मन है, किन्तु हमारे पास एक शरीर भी है।

किसी ने मुझसे एक बार पूछा था कि क्या कोई भावना विचार उत्पन्न कर सकती है, अथवा विचार भावना उत्पन्न करती है? इस प्रश्न के लिए मेरा मूल उत्तर हाँ है। यह दोनों प्रकार से हो सकता है और इसे समझने के लिए हमें स्नायु-विज्ञान विषयक *(Neurological)* शोधकर्ता होने की आवश्यकता नहीं है। हम हर समय इसका अनुभव करते हैं। इस विषय में सोचें। आपके पेट में एक सनसनी होती है जिसे आप भूख का दर्द कहते हैं। और उस अनुभूति के परिणामस्वरूप, क्या होता है? आपके मस्तिष्क में क्या विचार आता है? "मैं अब कुछ भोजन करना चाहता हूँ।" इस विषय में, आपके विचार आपकी शारीरिक अनुभूति के लिए एक प्रतिक्रिया है।

दूसरी ओर, यदि आप बैठे हैं और विचार कर रहे हैं कि आपको कल क्या करना है और आप उन सभी वस्तुओं के विषय में विचार करते हैं जहां आपसे भूल हो सकती हैं, तो इससे पहले कि आप कुछ समझ पाएं, आपको

अपने पेट में या मस्तक में पीड़ा की अनुभूति होने लगेगी। आपका शरीर आपके विचार के अनुसार शारीरिक रूप से प्रतिक्रिया कर रहा है। इसे हम “मनोदैहिक *(Psychosomatic)* परस्पर क्रिया” कहते हैं; जो कि मन और शरीर के मध्य एक संपर्क होता है।

जैसा कि मैंने कहा, कुछ लोग मन को इस रीति से समझना चाहते हैं जैसे कि यह शरीर से पूरी रीति से पृथक हो और अन्य लोग विचार और मन को इस रीति से समझाना चाहते हैं जैसे कि वे एक शारीरिक प्रतिक्रिया से अधिक कुछ भी नहीं हैं। मसीही धर्म इन दोनों विकल्पों को अस्वीकार करता है। हमारा मानना है कि विचार और क्रिया, विचार और भावना के मध्य एक शक्तिशाली परस्पर क्रिया उपस्थित रहती है।

सत्रहवीं शताब्दी में, बुद्धिवाद के युग के आगमन और जन्म के साथ, फ्रांसीसी गणितज्ञ रेने डेसकार्टेस *(René Descartes)* कारणवाद के प्रश्न में उलझे हुए थे: विचार और क्रिया एक दूसरे से कैसे जुड़े हुए या सम्बन्धित हैं? मैं अपने सामने रखी कुर्सी को उठाने के विषय में कैसे विचार कर सकता हूँ और फिर वास्तव में उसे उठाने के लिए कैसे कार्यवाही कर सकता हूँ? अथवा इसके विपरीत, शारीरिक क्रियाएँ विचार को कैसे उत्पन्न या उत्तेजित करती हैं?

यह कोई सरल स्थिति नहीं है क्योंकि हम भौतिक, अथवा पदार्थ को मात्रात्मक वस्तुओं से बना हुआ मानते हैं। हम भौतिक और बौद्धिक के मध्य एक आधारभूत अन्तर के विषय में विचार करते हैं। वे एक दूसरे से जुड़े हुए हो सकते हैं, वे एक दूसरे से सम्बन्धित हो सकते हैं, परन्तु वे एक ही वस्तु नहीं

हैं। एक विचार को तौला नहीं जा सकता। यह कोई स्थान नहीं लेता। इसे मापा नहीं जा सकता। यह गैर-भौतिक है। और इसलिए हम पदार्थ और विचार के मध्य अन्तर करते हैं, भले ही हम समझते हैं कि वे एक दूसरे से सम्बन्धित हो सकते हैं। एक विचार एक भौतिक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है और एक भौतिक प्रतिक्रिया एक विचार उत्पन्न कर सकती है।

यही वह विषय है जिससे डेसकार्टेस एक दार्शनिक-गणितज्ञ के रूप में जूझ रहे थे और उन्होंने एक सिद्धान्त विकसित किया जिसे अंतःक्रियावाद *(interactionism)* कहा जाता है। उन्होंने कहा कि विचार और पदार्थ के मध्य, मन और शरीर के मध्य किसी प्रकार की अंतःक्रिया होती है। परन्तु यह निर्धारित करने के प्रयास में कि एक विचार एक क्रिया में कैसे परिवर्तित होता है, डेसकार्टेस ने "विस्तार" और "गैर-विस्तार" के मध्य अन्तर किया। उन्होंने पदार्थ और मन के मध्य अन्तर को इंगित करने के लिए यह अन्तर किया। जो भौतिक है उसका सदैव कुछ सीमा तक विस्तार होता है। यह एक निर्दिष्ट स्थान घेरता है और इसका एक निर्दिष्ट भार होता है। वह जो बौद्धिक है उसका कोई भार और आकार नहीं होता।

तो आप एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में कैसे पहुँच सकते हैं? यह मानव जीवन के सबसे बड़े रहस्यों में से एक है। डेसकार्टेस ने यह सिद्धान्त बनाया कि विचार और क्रिया के मध्य पारगमन का बिन्दु मस्तिष्क के आधार पर शीर्षग्रन्थि में उपस्थित है। उनका तर्क गणित पर आधारित था। उन्होंने कहा, "विस्तार और गैर-विस्तार के मध्य पारगमन का एक बिन्दु होना चाहिए।" उन्हें *बिन्दु* शब्द

प्रिय था क्योंकि, सैद्धान्तिक रूप से, आप एक रेखा पर अनन्त संख्या में बिन्दु रख सकते हैं क्योंकि एक बिन्दु स्थान घेरता है परन्तु उसका कोई आयाम नहीं होता है। यह न तो मछली है और न ही मुर्गी। यह न तो शुद्ध विस्तार है और न ही शुद्ध गैर-विस्तार। डेसकार्टेस एक जटिल श्रेणी की खोज में थे जिससे वे कह सकें, "यह वह स्थान है जहाँ पारगमन होता है।" परन्तु सच में, आज तक हम नहीं जानते कि यह अंतःक्रिया कैसे होती है।

और क्योंकि हम नहीं जानते कि यह परिवर्तन कैसे होता है, इसलिए कुछ लोग इस विषय को अस्वीकार करने का प्रयास करते हैं कि यह होता ही नहीं है। परन्तु हम जानते हैं कि हमारे शरीर और हमारे मस्तिष्क में अन्तर है। हम जानते हैं कि हम अपने विचार के लिए उत्तरदायी हैं और हमारे कार्य हमारे विचार से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। यह समझने के लिए डेसकार्टेस अथवा आधुनिक न्यूरोलॉजिकल शोध को समस्या नहीं हुई कि जैसा मनुष्य अपने हृदय में विचार करता है, वैसा ही वह होता है (नीतिवचन 23:7)। हम अपने भौतिक जीवन में, अपने मन के सबसे गहरे विचारों को जीते हैं। इसलिए हमें परिवर्तित जीवन के लिए परिवर्तित मन की आवश्यकता है।

## अध्याय तीन

# आप कैसे जानते हैं?

## *How Do You Know?*

मैंने एक बार एक बम्पर स्टिकर (वाहनों के पीछे प्रदर्शित हास्य विज्ञापन) देखा था जिस पर लिखा था, "चूँकि मैं एक खिलाड़ी हूँ; इसलिए मैं असत्य बोलता हूँ।" यह हास्यपूर्ण बम्पर स्टिकर रेने डेसकार्टेस द्वारा उत्पन्न एक प्रसिद्ध वाक्याँश का एक रुपान्तर था, जिसके विषय में हम संक्षेप में देख रहे हैं। डेसकार्टेस का प्रसिद्ध सूत्र था *कोगिटो एर्गो सम (cogito ergo sum)*: "चूँकि मैं विचार करता हूँ; इसलिए मैं हूँ।" अब, आप पूछ सकते हैं, एक दार्शनिक अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने की चेष्टा में अपना बहुमूल्य समय या प्रयास क्यों लगाएगा? डेसकार्टेस जैसा व्यक्ति इस विशेष प्रस्ताव को स्थापित करने के लिए क्यों परिश्रम करेगा?

समय-समय पर पश्चिमी इतिहास में आत्मवाद *(solipsism)* नामक दर्शनशास्त्र का एक गूढ़ विचारधारा का दर्शन उभरता रहा है। आत्मवाद अथवा अहंवाद उस दार्शनिक सिद्धान्त को कहते है जिसके अनुसार समस्त वास्तविकता एक भ्रम है या हमारी अपनी कल्पना का अनुमान है। यह दार्शनिक प्रश्न पूछता है, उदाहरण के लिए, मैं कैसे जानूँ कि आप वास्तविक हैं और मात्र मेरी कल्पना की उपज या मेरे स्वप्नों में से एक चरित्र नहीं हैं? और यह तब और भी विचित्र हो जाता है जब हम यह प्रश्न पूछते हैं, मैं कैसे जानूँ कि मैं आपके स्वप्नों में से एक चरित्र नहीं हूँ? हम जानते हैं कि कभी-कभी हमारे स्वप्न इतने तीव्र और स्पष्ट हो सकते हैं कि स्वप्न से जागने के पश्चात, हमें विश्वास नहीं होता कि हमने जो स्वप्न देखा था वह वास्तविक था अथवा काल्पनिक। कुछ दार्शनिकों ने प्रस्तावित किया है कि आप अपने व्यक्तिगत अस्तित्व के विषय में सुनिश्चित नहीं हो सकते।

आज हम बहुधा यह विचार सुनते हैं कि हम सापेक्षवाद के युग में रह रहे हैं और वस्तुनिष्ठ या पूर्ण सत्य जैसी कोई वस्तु का अस्तित्व नहीं है। सापेक्षवाद हमें बताता है कि सत्य व्यक्तिपरक है या केवल किसी की व्यक्तिगत रुचि का विषय है और तथ्य या वस्तुनिष्ठ वास्तविकता जैसी किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।

इस प्रकार का अभिकथन ऐतिहासिक मसीही विश्वास के लिए विनाशकारी है क्योंकि मसीही विश्वास कुछ ऐसे प्रस्तावों पर आधारित है जिन्हें हम सम्पूर्ण रूप से सत्य मानते हैं, जैसे कि परमेश्वर का अस्तित्व और नए नियम के सत्यपूर्ण दृढ़ कथन। हम यह नहीं कहते कि ख्रीष्ट का पुनरुत्थान एक

व्यक्तिपरक अनुभव था जिसे आप अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार अपना सकते हैं या छोड़ सकते हैं, परन्तु हम इसे एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता के रूप में देखते हैं जो सभी मनुष्यों से प्रतिक्रिया की माँग करती है।

परन्तु जब आप ऐसी संस्कृति में वास करते हैं जहाँ लोग कहते हैं कि सत्य जैसी किसी भी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है, अथवा वस्तुनिष्ठता जैसी कोई वस्तु नहीं है और किसी भी वस्तु को किसी भी सीमा तक निश्चितता के साथ नहीं जाना जा सकता है, तो डेसकार्टेस जैसा कोई व्यक्ति कम से कम एक ऐसा आधार प्रदर्शित करने का प्रयास करता है जो निर्विवाद हो, जिसे वस्तुनिष्ठ और प्रदर्शनकारी रूप से सिद्ध किया जा सके। अवश्य ही, डेसकार्टेस इक्कीसवीं सदी में नहीं रहे। वे सत्रहवीं सदी में रहे और उन्हें आम तौर पर तर्कवाद विचारधारा का मुख्य प्रवक्ता माना जाता है, जो उस समय पश्चिमी विचारों पर हावी था।

डेसकार्टेस के जीवन से पहले की सदी में विचार के जगत में सबसे बड़ा उथल-पुथल 1500 के दशक का प्रोटेस्टेंट सुधार आन्दोलन *(Protestant Reformation)* था। सोलहवीं सदी के सुधार आन्दोलन ने, धर्मी ठहराए जाने और बाइबल के अधिकार आदि के विषय में अपने विवादों के अतिरिक्त, समाज के स्वरूप पर गहन प्रभाव डाला क्योंकि इसने मसीही एकता और कलीसिया के अखण्ड अधिकार के पतन में योगदान दिया।

प्रारम्भिक शताब्दियों से लेकर मध्य युग तक, कलीसिया के जीवन में एक विशेष सिद्धान्त विकसित हुआ जिसे एक छोटे से लैटिन वाक्याँश में

अधिकृत किया गया था: *फ़ाइड्स इंप्लिसिटम (fides implicitum)*। हो सकता है कि आपने लोगों को यह कहते सुना होगा, "मैं चाहता हूँ कि आप मुझ पर निस्संदेह विश्वास करें।" इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि मैं चाहता हूँ कि आप मुझ पर बिना किसी प्रश्न के, बिना किसी विद्वेष के, बिना किसी विद्रोहात्मक भावना के विश्वास करें। आपको एक शिक्षक के रूप में मेरे अधिकार को चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए और मैं चाहता हूँ कि आप मेरी बात पर विश्वास करें क्योंकि मैंने ऐसा कहा है। माता-पिता अपने बच्चों के साथ इस प्रकार के हथकंडे अपनाते हैं जब वे उनके "क्यों" प्रश्नों का उत्तर देने से थक जाते हैं। माता-पिता धैर्यपूर्वक अपने निर्णयों के कारणों को समझाने का प्रयास करते हैं, परन्तु छठे या सातवें "क्यों" के उपरान्त, वे अंततः "क्योंकि मैंने ऐसा कहा हैं" की सहायता लेते हैं। उस बिन्दु पर, माता-पिता बच्चे से समर्पण या मौन स्वीकृति मांग रहे हैं कि वह किसी विषय में उनकी बात मान ले।

कलीसिया के लिए यह बहुत अभिमानी लग सकता है कि वह अपने लोगों से यह अपेक्षा करे कि वे कलीसिया द्वारा शिक्षित हर शिक्षा पर पूर्ण विश्वास के साथ सहमत हों। परन्तु यद्यपि कलीसिया की अचूकता को 1870 तक परिभाषित नहीं किया गया था, परन्तु यह विचार पहले से ही उपस्थित था। अब यदि, वास्तव में, कलीसिया अचूक है जब वह *विश्वास (de fide)* के विषय की शिक्षा देती है, यदि कलीसिया के पास परमेश्वर की कृपा है जो उसकी शिक्षाओं को अचूक बनाती है, तो क्या किसी व्यक्ति के लिए पूर्ण विश्वास के साथ सहमत होना पूरी रीति से उचित नहीं होगा?

आइए कलीसिया की सीमा से बाहर के विषय पर विचार करें, जिसे हम मानवता के भ्रष्टाचार से ग्रसित मानते हैं और आइए अपना ध्यान परमेश्वर की ओर मोड़ें। क्या एक तर्कसंगत, विचारशील व्यक्ति सर्वशक्तिमान परमेश्वर द्वारा कही गई किसी भी बात पर पूरी रीति से विश्वास करेगा? अथवा आप कहेंगे: "मुझे कोई चिन्ता नहीं है कि आप कौन हैं, हे सृष्टिकर्ता। मैं आपकी प्रामाणिकता देखना चाहता हूँ?" जब परमेश्वर अपनी प्रामाणिकता दिखाता है, तो आप स्वीकार करते हैं कि वह परमेश्वर है और आप जान जाते हैं कि यह परमेश्वर सर्वज्ञानी और शाश्वत है। यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति से भेंट करते हैं जिसके विषय में आप आश्वस्त हैं कि वह शाश्वत है और सब कुछ जानता है और सर्व-धर्मी है और वह आपके सामने कोई प्रस्ताव रखता है, तो क्या आप उस पर विश्वास करेंगे?

परमेश्वर पर *सम्पूर्ण विश्वास* करने *(fides implicitum)* से कम कुछ भी देना अहंकारपूर्ण कार्य होगा। यदि हम जानते कि यह परमेश्वर ही था जो बोल रहा था, तो किस प्राणी को परमेश्वर के मुख से निकली बातों की सत्यता को चुनौती देने का अधिकार होगा? इसलिए, जब परमेश्वर ऐसी बातों के विषय में बोलता है, जिन्हें हम अपनी नग्न बुद्धि से नहीं समझ सकते, तो मसीही लोगों के लिए जीवित परमेश्वर पर भरोसा करना अन्धविश्वास की बात नहीं है। इसीलिए कभी-कभी लोगों को यह विचार आता है कि विश्वास, जैसा कि यह मसीही जीवन में प्रकट होता है, अनावश्यक अथवा तर्कहीन विषय है जो हमारे अन्दर एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता को दर्शाता है और कि किसी भी वस्तु के अस्तित्व की पुष्टि करने का एकमात्र मार्ग उसका तत्काल, ठोस प्रमाण होना है।

डेसकार्टेस का आशय यह था: यदि हम परमेश्वर के वस्तुनिष्ठ अस्तित्व को स्थापित कर पाते हैं, तब उसका अस्तित्व ही इस बात को प्रभावित करता है कि हम ब्रह्माण्ड में उपस्थित हर वस्तु की व्याख्या कैसे करते हैं। यदि आप किसी पौधे को उगते हुए देखते हैं अथवा प्रयोगशाला में कोई प्रक्रिया होती हुई देखते हैं और आप मानते हैं कि परमेश्वर का अस्तित्व नहीं है, तो आप उस पौधे की वृद्धि अथवा उस विशेष गतिविधि की प्रगति के महत्व को कैसे समझते हैं, यह इस स्वयंसिद्ध सिद्धान्त से पूरी रीति से निर्धारित होगा कि परमेश्वर का अस्तित्व नहीं है। दूसरी ओर, यदि आप जानते हैं कि एक परमेश्वर है जो पारलौकिक और शाश्वत है और सभी वस्तुओं का निर्माता है और वह सभी वस्तुओं को नियंत्रित करता है, तो पौधे के विषय में आपकी समझ—स्वयं जीवन के विषय में आपकी समझ—सम्पूर्ण रीति से परिवर्तित हो जाती है। इसलिए हर व्यक्ति का विश्वदृष्टिकोण या तो परमेश्वर-केन्द्रित होता है—अर्थात परमेश्वर-केन्द्रित—अथवा मानव-केन्द्रित, मनुष्य-केन्द्रित। परमेश्वर के अस्तित्व के आधार से अधिक महत्वपूर्ण और कोई आधार नहीं है।

यदि हम समझते हैं कि परमेश्वर का आस्तित्व है और कि वह शाश्वत और सर्वज्ञानी है और यदि हम इस दृढ़ विश्वास तक पहुँच सकते हैं कि पवित्रशास्त्र उसका वचन है, तब क्या पवित्रशास्त्र की शिक्षा को स्वीकार करना तर्कहीन होगा? यदि यह सच है कि यह उसका वचन है और जैसा कि यीशु ने घोषणा की, "उसका वचन सत्य है," तो क्या हम उसके मुँह से निकलने वाले हर वचन को स्वीकार न करने के लिए विक्षिप्त नहीं कहलाएंगे?

अवश्य, सबसे बड़ा विवाद यह है, कि क्या यह उसका वचन है? मैं मसीही ईश्वरविज्ञानियों के इस बोझ को समझता हूँ कि यह प्रमाण देना आवश्यक है कि यह परमेश्वर का वचन है। परन्तु फिर से, यदि आप वस्तुनिष्ठ आधार पर आश्वस्त हैं कि यह परमेश्वर का वचन है, तो यह कितनी मूर्खता होगी कि आप जो कहते हैं उसकी सत्यता पर आघात करें। यदि यह परमेश्वर का वचन है, तो यह सत्य होना चाहिए और यदि यह सत्य है, तो आपको इसे चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए।

परन्तु सोलहवीं शताब्दी में, कलीसिया की एकता और पोप और कलीसियाई परिषदों के अधिकार के पतन के उपरान्त, लोग कलीसिया की शिक्षा में निहित विश्वास की इस अवधारणा से जूझ रहे थे। लोग अभी भी निहित रूप से परमेश्वर में अपनी पूर्ण आस्था को रखने में विश्वास करते थे, परन्तु प्रश्न यह था, कि परमेश्वर क्या कहता है और इसका क्या अर्थ है? सोलहवीं शताब्दी में कलीसिया के सबसे अच्छे बुद्धिजीवी महत्वपूर्ण ईश्वरविज्ञानीय पुष्टीकरणों पर संघर्षरत थे।

जैसे-जैसे हम सत्रहवीं सदी में प्रवेश कर रहे थे, यह मूल प्रश्न उभरकर सामने आ रहा था, कि, मैं कैसे जान सकता हूँ कि क्या सत्य है? और एकाएक, दर्शनशास्त्र ने ज्ञानमीमांसा के प्रश्न पर एक नया गहन दृष्टिकोण अपनाया। ज्ञानमीमांसा सरल प्रश्नों का अध्ययन है: हम जो जानते हैं उसे कैसे जानते हैं? हम अपने विश्वासों पर कैसे पहुँचते हैं? क्या वे अनावश्यक हैं, क्या वे किसी आधार पर आधारित नहीं हैं, अथवा क्या हमारे द्वारा पुष्टि किए गए सत्यों के लिए किसी प्रकार का वस्तुनिष्ठ आधार है?

ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उस प्रश्न को पूछकर जिसे पिलातुस ने यीशु से उसकी सुनवाई के क्षण पूछा था, कलीसिया को पुन: आरम्भ करना पड़ेगा और पश्चिमी दर्शनशास्त्र को पुन: आरम्भ करना पड़ेगा कि: "सत्य क्या है?" (यूहन्ना 18:38)। और न केवल "सत्य क्या है?" वरन् यह भी कि "मैं इसे कैसे जान सकता हूँ?" कुछ लोग निन्दक बन गए और कहने लगे कि सत्य अज्ञात है। हम निश्चितता के साथ कुछ भी नहीं जान सकते। यह वह स्थान है जिसमें डेसकार्टेस प्रवेश करते हैं।

हमें प्राचीन काल से ही बताया जाता रहा है कि अपरीक्षित, अनपेक्षित जीवन का कोई महत्व नहीं है और मैं इससे सहमत भी हूँ। और फिर भी, मुझे ऐसे लोगों से मिलना असहज लगता है जो स्वयं अपने दर्शन और धार्मिक विश्वासों को सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखते हैं और पूछते हैं: "मैं जो मानता हूँ, उसे क्यों मानता हूँ? क्या मैं केवल इसलिए यह मानता हूँ क्योंकि यह मेरे माता-पिता अथवा उस उप-सांस्कृतिक समुदाय ने मुझे दिया है जिसमें मैं रहा हूँ?"

आप जो मानते हैं, उसे क्यों मानते हैं? आप जो विश्वास करते हैं, वह निर्धारित करता है कि आप अपना जीवन कैसे जीते हैं। यह स्वयं से पूछने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है, विशेष रूप से एक मसीही के रूप में, क्योंकि एक वास्तविक अर्थ में हमें अपने विश्वास प्रणालियों को उचित सिद्ध करने के लिए कहा जाता है, न केवल अपने पड़ोसी के लिए वरन् स्वयं के लिए भी, क्योंकि हमें अपने विश्वास में परिपक्व होने के लिए बुलाया गया

है। पौलुस हमें दुष्टता में शिशु होने के लिए कहता है, परन्तु बुद्धि में सयाना होने के लिए कहता है (1 कुरिन्थियों 14:20), जिसका अर्थ है कि हमें अपने सत्य के आधार को देखने के लिए परमेश्वर द्वारा दिए गए बुद्धि का उपयोग करना होगा। हमें इससे भयभीत नहीं होना चाहिए; हमें इससे प्रोत्साहित होना चाहिए। जितना अधिक हम पवित्रशास्त्र की जाँच करेंगे, उतना ही हम इसके आन्तरिक सामंजस्य और ज्ञान की गहनता पर आश्चर्यचकित होंगे।

## अध्याय चार

# मन और चेतना

## *The Mind and the Senses*

हम ज्ञान के कुछ मूलभूत विषयों पर विचार कर रहे हैं जो सत्रहवीं शताब्दी में मसीही विचारकों और दार्शनिकों को चिन्तित करते थे। विशेष रूप से, हम फ्रांसीसी जेसुइट गणितज्ञ रेने डेसकार्टेस *(René Descartes)* के कार्य की जाँच कर रहे हैं, जो अपने आदर्श-वाक्य *कोगिटो एर्गो सम (cogito ergo sum)* के लिए प्रसिद्ध हैं: "चूँकि मैं विचार करता हूं; इसलिए मैं हूँ।"

हमने इस विषय पर विचार किया कि डेसकार्टेस जैसे बौद्धिक विशालता वाले व्यक्ति ने अपना अस्तित्व प्रमाणित करने में इतना समय क्यों लगाया। सोलहवीं शताब्दी में विशेष रूप से कलीसिया में प्राधिकरण के टूटने की समस्याओं के परिणामस्वरूप, सत्रहवीं शताब्दी में ये प्रश्न व्याप्त थे: "मैं कैसे

जान सकता हूँ कि कोई भी वस्तु सत्य है अथवा नहीं? मैं अपने शिक्षकों, विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों से जो भी ज्ञान प्राप्त करता हूँ, उस पर मैं कैसे भरोसा कर सकता हूँ?" यह वह समय था जब ज्ञानमीमांसा शास्त्र *(epistomology)* के विज्ञान की सावधानीपूर्वक जाँच की गई थी, जो इस प्रश्न का अध्ययन करता है कि मैं कैसे कुछ जान सकता हूँ?

डेसकार्टेस ने अपनी बौद्धिक तीर्थयात्रा का आरम्भ अनावश्यक मान्यताओं पर युद्ध की घोषणा करके की। उन्होंने कहा: "मैं हर उस वस्तु पर सन्देह करूँगा जो मैंने कभी सीखी है। मैं हर उस वस्तु पर सन्देह करूँगा जिस पर मैं सन्देह कर सकता हूँ। मैं किसी भी विषय को बेखटके ग्रहण नहीं करूँगा।"

परन्तु, अभी भी कुछ ऐसी वस्तुएँ थीं जिन्हें वह बेखटके निश्चित मानते थे, जिनका उन्होंने पूरी रीति से त्याग नहीं किया था, परन्तु उनकी प्रक्रिया कठोर और व्यवस्थित थी। वह हर वस्तु को इस प्रकार देखते थे: "मैं अपनी आँखों से जो कुछ देखता हूँ या अपने कानों से जो कुछ सुनता हूँ या अपने मुँह से जो कुछ चखता हूँ, उसके विषय में मैं कैसे निश्चित रूप से जान सकता हूँ? मैं अपनी इन्द्रियों से जो कुछ भी अनुभव करता हूँ, उसके विषय में मैं कैसे निश्चित हो सकता हूँ?"

आज, हमारी संस्कृति यह कहती है कि जब तक हम किसी भी विषय को अपनी इन्द्रियों से अनुभव नहीं कर लेते हैं, तब तक हम इसकी सत्यता पर सम्पूर्ण रूप से भरोसा नहीं कर सकते। हम कहते हैं, "मैं इसे देखना चाहता हूँ, इसका स्वाद लेना चाहता हूँ, इसे छूना चाहता हूँ, इसे सूंघना चाहता हूँ,"

इत्यादि। हम जो कुछ भी मानते हैं, उस पर विश्वास करने के लिए हमें भौतिक, ठोस, प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। परन्तु डेसकार्टेस ने कहा, “मैं अपनी अनुभूति करने की क्षमता को ही चुनौती देने जा रहा हूँ।”

उन्होंने इसे दो भिन्न स्तरों पर चुनौती दी। एक ओर, डेसकार्टेस ने उस पर ध्यान केन्द्रित किया जिसे हम कर्ता-वस्तु समस्या कहते हैं (हम अगले अध्याय में इस दूसरी समस्या पर विचार करेंगे)। आप एक जीवित, श्वास लेने वाले, विचार करने वाले व्यक्ति के रूप में एक “कर्ता” हैं और आपके बाहर स्थित हर वस्तु को “वस्तु” कहा जा सकता है। आप मुझे देख रहे हैं। मैं आपके ज्ञान की एक वस्तु हूँ। और भले ही मैं अपने आप में एक कर्ता हूँ, जब मैं आपको देखता हूँ, तो आप मेरी अनुभूति की एक वस्तु हैं।

कर्ता-वस्तु से आधारित समस्या में प्रश्न यह है, कि मैं कैसे निश्चित रूप से जान सकता हूँ कि बाह्य स्वरूप संसार, वस्तुनिष्ठ संसार, मेरे अपने मन के बाहर स्थित संसार, वास्तव में वैसा ही अस्तित्व रखता है जैसा मैं उसे समझता हूँ? यह कोई लघु प्रश्न नहीं है। हम पूछ रहे हैं, कि वास्तविकता के विषय में मेरी धारणा कितनी सटीक है? क्या सब कुछ वैसा ही है जैसा मैं समझता हूँ, या बाहर स्थित संसार और मेरे मन के मध्य स्थित इस पारगमन में किसी प्रकार की अंतर्निहित विकृति है? मेरे विचार मेरे मन में निहित हैं और आपके विषय में मेरे विचार मेरे मन और आपके मन के मध्य सीधे जुड़ाव से प्राप्त नहीं होते हैं। मैं आपके मन में तभी पहुँच सकता हूँ जब आप मुझे इसके विषय में कुछ बताना या उजागर करना चाहें कि आपके मन में क्या है। और आप इसे

विभिन्न रीतियों से कार्यान्वित करते हैं। आप इसे अभिनय करके दिखा सकते हैं। आप इसे बोल सकते हैं। आप इसे लिख सकते हैं। परन्तु मुझे इससे जुड़ने के लिए अपनी पाँच इंद्रियों में से एक या अधिक का उपयोग करना होगा। मुझे अपनी आँखों से पढ़ना होगा या अपने कानों से सुनना होगा, अथवा, यदि मैं नेत्रहीन होता, तो मैं अपनी उंगलियों से ब्रेल लिपि के द्वारा पढ़ सकता था, परन्तु हमारे मध्य स्थित इस संचार प्रक्रिया में मेरे शरीर का कोई न कोई भाग व्यस्त होना चाहिए। आप देखिए, शरीर आपके आस-पास के संसार में आपका व्यक्तिगत पारगमन है। आपके मन से बाह्य संसार में जाने का आपका माध्यम आपका शरीर ही है।

पवित्रशास्त्र के लेखकों ने इस विषय को स्पष्ट रूप से समझा था। उदाहरण के लिए, पतरस ने कहा, "हमने चतुराई से गढ़ी हुई कहानियों का सहारा नहीं लिया।" अर्थात, हम काल्पनिक कहानी नहीं लिख रहे हैं, अर्थात, ऐसी वस्तुएँ जिसे हमने अपनी काल्पनिक कल्पना से रचा है। "हमने तुम्हें हमारे प्रभु यीशु मसीह के सामर्थ और आगमन का समाचार दिया, क्योंकि हम उसके महात्म्य के आंखों देखे गवाह थे" (2 पतरस 1:16)। अथवा हम पुनरुत्थान के उपरान्त सन्देह करने वाले थोमा के विषय में विचार करते हैं, जो कहता है, "जब तक मैं उसके हाथों में कीलों के चिन्ह न देख लूँ और कीलों के छेद में अपनी उँगली न डालूँ और उसके पंजर में अपना हाथ न डालूँ, तब तक विश्वास न करूँगा" (यूहन्ना 20:25)। थोमा वह मांग रहा था जिसे हम आज अनुभूतिमूलक प्रमाणीकरण कहते हैं—अर्थात, ऐसा प्रमाण या साक्ष्य जो

देखने, चखने, छूने, सुनने आदि पर आधारित हो, जिससे मन (इस सिद्धान्त के अनुसार) उस बात को सत्य के रूप में न अपनाए जिसे पाँचों इन्द्रियों द्वारा सत्यापित या सिद्ध नहीं किया जा सकता।

कर्ता और वस्तु की इस समस्या के कारण डेसकार्टेस ने प्रचलित स्थिति को ही उलट दिया। डेसकार्टेस ने कहा कि इन्द्रिय बोध प्रमाण का उच्चतम रूप या निश्चितता तक पहुँचने की अधिमानित रीति नहीं है; उन्होंने कहा कि यह सत्य तक पहुँचने की एक निम्नतर रीति है। वह इन्द्रियज्ञान की उपयोगिता की निन्दा या खण्डन नहीं कर रहे थे, वरन् वह केवल इन्द्रियों के माध्यम से सत्य जानने की सीमाओं को दिखाने का प्रयास कर रहे थे। क्योंकि, आप कैसे निश्चिंत हो सकते हैं कि जब आप कुछ देख रहे हैं, तो आपके नेत्र आपके साथ छल नहीं कर रहे हैं? मरीचिका या मतिभ्रम के विषय में आप क्या कहेंगे?

बीसवीं सदी में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में एक आकर्षक बहस हुई जब टिमोथी लीरी *(Timothy Leary)* मनोविज्ञान विभाग में मतिभ्रमकारी औषधीयों के द्वारा प्रयोग कर रहे थे। पता चला कि वह इन प्रयोगों में एलएसडी नामक एक रासायनिक पदार्थ का उपयोग कर रहे थे, जिससे वह संकट में पड़ गए। इस विषय को लेकर न्यायालय में अभियोग चला क्योंकि इस पेशे में मतिभ्रम उत्पन्न करने वाली औषधि का प्रयोग करना न्याय के विरुद्ध था।

अपने बचाव के लिए, लेरी ने "*मनोविकृतिकारी*" *(psychedelic)* शब्द को लोकप्रिय बनाया। लेरी ने कहा कि जब कोई व्यक्ति मन में परिवर्तन लाने वाली औषधि एलएसडी *(LSD)* के प्रभाव में होता है, तो ऐसा नहीं

होता कि वास्तविकता के प्रति मन की बोध शक्ति विकृत हो जाती है, जैसा कि एक मतिभ्रम उत्पन्न करने वाली औषधि की स्थिति में होता है, वरन् ऐसा होता है कि मन परिष्कृत हो जाता है। दूसरे शब्दों में, वह कह रहा था कि एलएसडी का सेवन आपको वास्तविकता की अधिक सटीक छवि दिखाता है जो कि एलएसडी के सेवन के अतिरिक्त सम्भव नहीं हैं। एलएसडी के सेवन के उपरान्त कलाकारों और संगीतकारों ने साक्ष्य प्रस्तुत किया कि उन्होंने ऐसे मिश्रण और सामंजस्य और रंग और आभास देखे जिन्हें वे पहले कभी इतनी तीक्ष्णता से नहीं देख पाए थे।

परन्तु ज्ञानमीमांसीय परिप्रेक्ष्य से जिस विषय में हम रुचि रखते हैं, वह है—कौन लेरी को गलत प्रमाणित कर सकता है? आप कैसे जानते हैं कि वास्तविकता वैसी ही है जैसा आप उसे समझते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर हमारे पास हैं, उदाहरण के लिए, कि हमारी इन्द्रिय बोध की अंतर्निहित सीमाएँ हैं।

हम जानते हैं कि कुछ प्राणियों की इन्द्रियाँ हमसे कहीं अधिक विकसित और प्रखर होती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ प्राणियों की घ्राण शक्ति हमसे कहीं अधिक विकसित होती है। वे केवल गन्ध से ही मीलों दूर की वस्तुओं का पता लगा सकते हैं। कुत्ते ऐसी आवृत्तियाँ सुन सकते हैं जो हम नहीं सुन सकते, उदाहरण के लिए कुत्ते के लिए उपयोग की जाने वाली सीटी की ध्वनि।

परन्तु डेसकार्टेस कहते हैं: “आप कैसे ज्ञात करते हैं कि यह सब एक बहुत बड़ी विकृति नहीं है? आप कैसे ज्ञात करते हैं कि मानसिक शरणालय में उपस्थित विक्षिप्त व्यक्ति की कोई सटीक बोधशक्ति नहीं है और हम हैं कि जो वास्तविकता को सही रीति से नहीं समझ पा रहे हैं?” अथवा मान लीजिए

कि कोई और भी इसमें लिप्त हो जाता है। आप कैसे ज्ञात करते हैं कि आप जो विचार कर रहे हैं अथवा जो भी आप देख रहे हैं अथवा सुन रहे हैं वह शैतान द्वारा निर्मित कोई षड़्यंत्र नहीं है? डेसकार्टेस पुराने नियम में भूत–सिद्धि करनेवाली एन्दोर की स्त्री की उपस्थिति जैसी वस्तुओं की ओर संकेत करेंगे, जिसने प्रेतसाधना के द्वारा शाऊल के लिए शमूएल का आह्वान किया था (1 शमूएल 28)। क्या शैतान के पास वास्तव में शमूएल को आहूत करने की क्षमता थी, अथवा यह एक भ्रम था? आप कैसे ज्ञात कर सकते हैं? इसलिए डेसकार्टेस ने शैतान को एक महान् कपटी माना, जो लोगों को सत्य के विकृत ज्ञान तक पहुँचाने का प्रयास करता रहता हैं।

डेसकार्टेस हर उस वस्तु पर सन्देह करने की कठोर प्रक्रिया से पारित हुआ जिस पर वह सन्देह कर सकता था। प्राधिकारी वर्ग असहमत थे, इसलिए वह उनसे निवेदन नहीं कर सकता था। वह किसी भी वस्तु को निश्चित रूप से कैसे जान सकता था? उसने कहा: "एक विषय है जिस पर मैं सन्देह नहीं कर सकता, बिना इस बात की पुष्टि किए कि मैं उस पर सन्देह कर रहा हूँ और वह यह है कि मैं इस विषय पर सन्देह नहीं कर सकता कि मैं सन्देह कर रहा हूँ, क्योंकि इस विषय पर सन्देह करने के लिए कि मैं सन्देह कर रहा हूँ, मुझे इस विषय पर सन्देह करना होगा कि मैं सन्देह कर रहा हूँ। इसलिए यदि मुझे सन्देह है कि मैं सन्देह कर रहा हूँ, तो मैं निश्चित रूप से सन्देह कर रहा हूँ। और यदि मुझे सन्देह है, तो मैं इसे प्रमाणित कर रहा हूँ।"

एक विषय जो उसे निश्चित रूप से ज्ञात था वह यह थी कि वह सन्देह कर रहा था। और यदि वह यह निश्चित रूप से जानता था, तो उसे कुछ और भी ज्ञात था: सन्देह करने के लिए, सन्देह अपने आप में एक विचार करना है।

इसके लिए चेतना की आवश्यकता होती है। यह मेरे पैर की अंगुली में मात्र एक झुनझुनी नहीं है, वरन् यह मेरे दिमाग में, मेरे विचारों में उपस्थित एक नकारात्मक पुष्टि या प्रत्याख्यान है। इसलिए यदि मैं सन्देह कर रहा हूँ, तो मैं विचार कर रहा होउँगा। अब, सम्भव है मैं इस विषय पर सन्देह कर सकता हूँ कि मैं विचार कर रहा हूँ, परन्तु इस विषय पर सन्देह करने के लिए कि मैं विचार कर रहा हूँ, मुझे विचार करना है। मुझे यह विचार करना होगा कि मैं विचार नहीं कर रहा हूँ। इसलिए यदि मैं यह भी विचार करता हूँ कि मैं विचार नहीं कर रहा हूँ, तो मैं क्या कर रहा हूँ? मैं विचार कर रहा हूँ। इसलिए चाहे मैं इस निष्कर्ष पर कैसे भी आऊँ, मैं इस निर्विवाद सत्य से नहीं बच सकता कि मैं विचार कर रहा हूँ और विचार करने के लिए एक विचारक होना चाहिए। इसलिए डेसकार्टेस ने कहा: "यदि मैं सन्देह कर रहा हूँ, तो मैं विचार कर रहा हूँ। यदि मैं विचार कर रहा हूँ, तो मैं व्यक्ति हूँ। यदि मैं विचार कर रहा हूँ, तो मैं हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं विचार कर रहा हूँ, *कॉगिटो (cogito)*। मैं विचार करता हूँ; इसलिए मैं हूँ।"

परन्तु डेसकार्टेस यह सब केवल संसार को यह प्रमाणित करने के लिए नहीं कर रहे थे कि रेने डेसकार्टेस का अस्तित्व है। वह जो खोज रहे थे वह निश्चितता के मार्ग के लिए एक प्रारम्भिक बिन्दु था, एक ऐसे सत्य के मार्ग के लिए जो वास्तव में सभी के लिए मायने रखता है। वह डेसकार्टेस के अस्तित्व की पुष्टि करने के लिए नहीं वरन् ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करने के लिए एक तर्कसंगत, बौद्धिक आधार की खोज कर रहे थे।

अब, फिर से, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इतना बौद्धिक व्यायाम क्यों करेंगे कि हममें से अधिकतर लोग बिना किसी आलोचना के और अपने

अनुभव के आधार पर इसे स्वीकार कर लेते हैं? यहाँ तक कि महान इमैनुअल कांट *(Immanuel Kant)* ने भी स्वयं के अस्तित्व को प्रमाणित करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने अहंकार की पारलौकिक धारणा का उल्लेख किया: "आप स्वयं को स्वयं के रूप में नहीं देख सकते। आप स्वयं को, अपनी आन्तरिक आत्मा को नहीं देख सकते, परन्तु आप इसे नकार भी नहीं सकते। यह आपकी अपनी चेतना का अभिन्न अंग है।

डेसकार्टेस यह संकेत देने का प्रयास कर रहे थे कि सभी विचारों का उद्भव चेतना से आरम्भ होता है। और इसलिए, मसीही दृष्टिकोण से, हमें पूछना होगा, हमारी चेतना न केवल हमारे स्वयं के प्रति चेतना को, वरन् परमेश्वर के प्रति हमारी चेतना को भी कैसे सम्मिलित करती है और उससे कैसे सम्बन्धित है?

यह उन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नों में से एक है जिससे एक मसीही व्यक्ति सदा जूझता रहेगा और यही वह विषय है जिस पर हम आगामी अध्याय में विचार करेंगे।

अध्याय पाँच

# ज्ञान के दो मार्ग

# *Two Ways of Knowing*

अपनी इस कठिन सन्देह प्रक्रिया के उपरान्त, रेने डेसकार्टेस अपने मूल सिद्धान्त पर पहुँचे "चूँकि मैं विचार करता हूँ; इसलिए मैं हूँ।" इस प्रक्रिया का कारण यह था कि डेसकार्टेस निश्चितता की खोज कर रहे थे। वह कुछ ऐसा आधार खोजना चाहते थे जिससे वह किसी वस्तु को निश्चित रूप से जान सकें।

वह जिस विषय से जूझ रहे थे, वह यह प्रश्न था कि जांच की दो भिन्न रीतियों से किस स्तर तक निश्चितता प्राप्त की जा सकती है। सत्य के प्रति निगमनात्मक दृष्टिकोण अथवा औपचारिक दृष्टिकोण होता है। इस के अतिरिक्त विवेचनात्मक दृष्टिकोण अथवा भौतिक दृष्टिकोण होता है अथवा, जैसा कि इसे कभी-कभी दर्शनशास्त्र में अधिक तकनीकी रूप से अनुभवसिद्ध

दृष्टिकोण कहा जाता है, जिसका सम्बन्ध इन्द्रियों द्वारा ज्ञान की खोज करने से है।

ऐतिहासिक रूप से, वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसी पद्धति है जो दो पैरों पर खड़ी है, निगमनात्मक और विवेचनात्मक, अथवा जिसे हम औपचारिक और भौतिक, अथवा तर्कसंगत और अनुभवसिद्ध कह सकते हैं। कभी-कभी हम विचार करते हैं कि पूरा वैज्ञानिक उद्यम सम्पूर्ण रीति से इन्द्रिय बोध पर आधारित है, वह ज्ञान जो हम इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त करते हैं। उत्सुक वैज्ञानिक आँकड़ों को एकत्र करने, प्रयोगशालाओं में विभिन्न वस्तुओं के व्यावहारिक स्वरूपों का अध्ययन करने और अपने सिद्धान्तों को अनुभवसिद्ध रूप से सत्यापित करने के लिए विभिन्न प्रयोगों के साथ अपने सिद्धान्तों का परीक्षण करने में रुचि रखते हैं-अर्थात, अवलोकन योग्य या मापने योग्य आँकड़ों या साक्ष्य के आधार पर। यह वैज्ञानिक पद्धति का आगमनात्मक पक्ष है।

आगमनात्मक की प्रक्रिया विशिष्ट से सार्वभौमिक की ओर, अथवा छोटे-छोटे आँकड़ों से नियमों की ओर अग्रसर होती है। हम अपने अवलोकन, विशेष घटनाओं अथवा किसी वस्तु के उदाहरणों का अवलोकन और अभिलेख कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम दस गिलहरियों को देख सकते हैं और देख सकते हैं कि सभी दस गिलहरियों की पूँछ घनी है। फिर हम अपने अध्ययन में गिलहरियों की संख्या सौ तक बढ़ा सकते हैं और हम देखते हैं कि सभी सौ गिलहरियों की पूंछ घनी है और हम अपने अध्ययन को एक हज़ार या एक लाख गिलहरियों तक विस्तार कर सकते हैं और हम पाएंगे कि एक लाख

गिलहरियों की पूंछ घनी है। शीघ्र ही हम यह मानने के लिए पर्याप्त आँकड़े प्राप्त कर लेते हैं कि घनी पूंछ का होना गिलहरी होने का एक अभिन्न अंग है, इसलिए तब हम एक नियम बनाते हैं कि सभी गिलहरियों की पूंछ घनी होती है।

परन्तु हमे इसमे कुछ समस्याएँ दिखती हैं। पहली समस्या जो हमारे सन्मुख आती है वह है गिलहरी जो घास काटने वाली मशीन से कुचली गई अथवा उसकी झाड़ीदार पूंछ कट गई अथवा उसमें किसी प्रकार की कोई आनुवंशिक कमी है जिसके कारण वह बिना घनी पूँछ के जन्मी है। परन्तु उन विसंगतियों से परे, हमारे पास सीमित जाँच की कुछ दूसरी समस्याएं भी है। किसी भी व्यक्ति को कभी भी सभी गिलहरी का अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला है और इसलिए हम कभी भी सभी गिलहरियों के विषय में सम्पूर्ण, व्यापक जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। फिर भी विज्ञान तब तक प्रतीक्षा नहीं करता जब तक कि हम अपने नियम को सार्वभौमिकीकरण करने से पहले समस्त विचार करने योग्य विशेषताओं की जांच नहीं कर लेते हैं।

विज्ञान के आगमनात्मक का यह लाभ है कि यह निराधार अटकलों या सिद्धान्तों के बनाने पर अंकुश लगाता है। कोई कह सकता है, “मैं व्यक्तिगत रूप से भूतोत्पात और हरे पेड़ों से बने छोटे-छोटे मनुष्यों के अस्तित्व में विश्वास करता हूँ जो चन्द्रमा के दूसरी ओर रहते हैं।” और मैं यह कह सकता हूँ, “आपके पास भूत-प्रेतों के लिए क्या प्रमाण हैं?” वह कहेगा, “मैंने एक भूत देखा है।” फिर हमें पंद्रह अन्य लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि उन्हें भूत-प्रेतों का अनुभव हुआ है। इसलिए वैज्ञानिकों का एक दल इसका अध्ययन करता

है और उन्हें ज्ञात होता है कि प्रमाण लुप्त होने लगते हैं। और फिर वह व्यक्ति कहता है: "परन्तु मेरे देखे गए भूत-प्रेतों में एक अजीबोगरीब गुण है। वे वैज्ञानिकों और सभी प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों के प्रति अतिसंवेदनशील है। इसलिए वे सदैव आने वाले वैज्ञानिक को देखते ही लुप्त हो जाते हैं।" यह वास्तव में एक संशय का विषय है।

इसके अतिरिक्त, हम कह सकते हैं कि आगमनात्मकता आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान का हृदय और आत्मा है। इसका कार्य आँकड़ों को एकत्र करना, सावधानीपूर्वक अवलोकन और माप करना, यहाँ तक कि विवरणों की जाँच करने के लिए परिष्कृत उपकरणों का उपयोग करना है जिससे हम सामान्य नियमों या विधि की खोज करते समय विवरणों के विषय में बहुत कुछ सीख सकें। हम अनुभव करते हैं कि आधुनिक विज्ञान के लक्ष्यों में से एक लक्ष्य है परिणामों की भविष्यवाणी करने में सक्षम होना। यह तथ्य भिन्न लक्षणों से पीड़ित लोगों के विभिन्न समूहों पर विशेष औषधियों के अनुप्रयोग के लिए सत्य प्रमाणित होता है। हम जानते हैं कि संसार में हर व्यक्ति एक स्तर तक अद्वितीय है और हर कोई एक विशेष औषधि के लिए एक ही प्रकार से प्रतिक्रिया नहीं करेगा। परन्तु चिकित्सक आगमनात्मक अनुसंधान के आधार पर निर्णय लेते हैं।

वैज्ञानिक पद्धति का निगमनात्मक पक्ष आपके द्वारा एकत्रित और अवलोकन किए गए और प्रयोग किए गए आँकड़ों से आपके द्वारा निकाले गए निष्कर्षों अथवा आपके द्वारा निकाले गए अनुमानों से सम्बन्धित है। निगमन का सम्बन्ध आँकड़ों के तर्कसंगत उपचार से है।

विज्ञान निगमन और आगमन दोनों के नियमों को लागू करता है और इसलिए यह कहता है कि ज्ञान प्राप्त करने के उद्यम में न केवल इन्द्रियाँ सम्मिलित हैं, वरन् मन भी सम्मिलित है। और जिसे हम वैज्ञानिक पद्धति कह रहे हैं, वह पवित्रशास्त्र के बोलने की रीति से बहुत भिन्न नहीं है। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, बाइबल उन वस्तुएँ को सन्दर्भित करती है जो बाहरी, बोधगम्य संसार में घटित होती हैं। पतरस ने कहा कि वे चतुराई से गढ़ी गई मिथकों की घोषणा नहीं कर रहा था जिसे कोई व्यक्ति अपनी कल्पना से आसानी से बुन सकता था, वरन् वे उन वस्तुओं की घोषणा कर रहे थे जिन्हें उन्होंने अपनी आँखों से देखा था और अपने कानों से सुना था (देखें 2 पतरस 1:16)।

दूसरे शब्दों में, बाइबल में एक के बाद एक ऐसी कहानियाँ अभिलेख की गई है जो इस विषय में अभिकथन करती हैं कि लोग वास्तव में क्या देखते हैं अथवा निरीक्षण करते हैं। अर्थात, यीशु के पुनरुत्थान को नए नियम में हमें कल्पना के निर्माण अथवा सैद्धान्तिक, अमूर्त सम्भावना के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। बाइबल के लेखकों का अभिकथन है कि बहुत से प्रत्यक्षदर्शियों ने यीशु को मरते हुए और तीन दिन के उपरान्त उसे कब्र से वापस आते हुए देखने का प्रमाण दिया है, इसलिए शास्त्रों के अधिकांश साक्ष्य अनुभवजन्य अवलोकन पर आधारित है।

परन्तु एक बार जब हम बाह्य, बोधगम्य संसार में कुछ देख लेते हैं, तो स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि, तो क्या हुआ? इन सबका क्या महत्व है?

इन सबका क्या अर्थ है? यहीं पर मन अब आँकड़ों के महत्व को समझने की चेष्टा में सक्रिय रूप से कार्यरत है।

इस के अतिरिक्त, हम देखते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति में ये दोनों तत्व सम्मिलित हैं। और ऊपरी सतह से देखने पर, ऐसा लगता है कि डेसकार्टेस इसका आधा भाग हटा रहा था–अर्थात, आगमनात्मक पक्ष, क्योंकि अपनी देखी हुई हर एक वस्तु पर वह सन्देह कर रहा था। उसने कहा, "मैं कभी भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं कर सकता कि मेरी इन्द्रियाँ मुझे धोखा नहीं दे रही हैं।" यह कर्ता-वस्तु की वह समस्या है जिस पर हमने पिछले अध्याय में विचार किया था।

दूसरी समस्या यह है कि हम इन्द्रियों से किसी भी वस्तु के विषय में कभी भी पूर्ण निश्चितता नहीं रख सकते। क्या इसका अर्थ यह है कि मैं अपनी आँखों से जो कुछ भी देखता हूँ, उसके सत्य के विषय में पूर्ण निश्चितता नहीं रख सकता? "देखना ही विश्वास करना है" के विषय में क्या कहेंगे? यदि मैं पुनरुत्थान के दिन की सुबह कब्र के सम्मुख खड़ा होता और यीशु को उस कब्र से बाहर आते और अपने पुनर्जीवित अवस्था में देखता, तो क्या मैं उसके पुनरुत्थान के विषय में पूरी रीति से आश्वस्त नहीं होता?

हम निश्चित रूप से इस विषय पर बहुत अधिक महत्व देते हैं कि हम अपनी आँखों से क्या देख सकते हैं अथवा अपने कानों से क्या सुन सकते हैं। वर्षों के हमारे व्यक्तिगत अनुभवों के दौरान, हम उस अवस्था पर पहुँच गए हैं जहाँ हम अपने विशेष अनुभवों में बहुत अधिक विश्वास कर सकते हैं, - अर्थात, न केवल हम क्या अनुभव कर रहे हैं, वरन् हम वास्तव में क्या देख रहे हैं अथवा अपने कानों से वास्तव में क्या सुन रहे हैं।

जब मैं पूर्ण निश्चितता के विषय में बात करता हूँ, तो मैं उस शब्द का प्रयोग दार्शनिक रूप में करता हूँ। पूर्ण निश्चितता से तात्पर्य उस वस्तु से है जिस पर तर्कसंगत रूप से प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। परन्तु हम जानते हैं कि प्रत्यक्षदर्शीयों से चूक हो सकती हैं और सभी प्रत्यक्षदर्शीयों के साक्ष्य अचूक नहीं होते; लोगों को लगता है कि वे ऐसी वस्तुएँ देखते हैं जो वास्तव में होती ही नहीं हैं। अब, यदि एक लाख लोग किसी विशेष दिन किसी घटना को देखने पर पूर्ण रूप से सहमत हैं, तो यह नितान्त असम्भव है कि उनमें से सभी एक लाख लोग भ्रम अथवा मतिभ्रम की अवस्था में थे। परन्तु सैद्धान्तिक रूप से, क्या यह सम्भव है कि एक ही समय में एक लाख लोगों को मतिभ्रम हो? हाँ, यद्यपि, यह नितान्त असम्भव है।

हम न्यायालय में साक्ष्यों की इस समस्या का सामना करते हैं, विशेषकर जब हम तर्कसंगत सन्देह के विषय में बात करते हैं। आपराधिक मामलों में, तर्कसंगत सन्देह से परे अपने अभियोग को प्रमाणित करना अभियोजन पक्ष का दायित्व है। यह सन्देह की छाया से परे होने जैसा नहीं है। आप चाहें तो किसी भी वस्तु पर सन्देह कर सकते हैं, इसके अतिरिक्त कि आप सन्देह कर रहे हैं, क्योंकि जिस सन्देह पर आप सन्देह कर रहे थे, वह प्रमाणित करता है कि आप सन्देह कर रहे थे। परन्तु यही वह बात थी जिसे डेसकार्टेस समझाने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने कहा कि ज्ञान के अनुभवजन्य पक्ष में अंतर्निहित सीमाएँ हैं। हम अपनी इन्द्रियों से कभी भी पूर्ण निश्चितता नहीं प्राप्त कर सकते।

अच्छा, क्या ऐसा कोई स्थान है जहाँ हम पूर्ण निश्चितता प्राप्त कर सकते हैं? डेसकार्टेस ने कहा हाँ, औपचारिक क्षेत्र में, निगमनात्मक क्षेत्र में। तर्कसंगत क्षेत्र में, हम पूर्ण, तर्कसंगत निश्चितता प्राप्त कर सकते हैं। और यह हमें सर्वत्र प्रचलित युक्तिवाक्य की ओर ले जाता है: "सभी मनुष्य नश्वर हैं। सुकरात एक मनुष्य है। इसलिए, सुकरात नश्वर है।"

क्या हम इसका पहला आधार पूर्णतः जान सकते हैं कि "सभी मनुष्य नश्वर हैं,"? नहीं, क्योंकि हमने सभी मनुष्यों की जाँच नहीं की है, क्या की है? हो सकता है कि इस क्षण से पहले जीवित रहने वाला हर मनुष्य नश्वर था, परन्तु लोगों की यह पीढ़ी इतिहास की ऐसी पहली पीढ़ी है जो अमर है। अब यह बहुत ही असम्भव लगता है, परन्तु ऐसा एकमात्र तरीका है जिससे आप पूर्ण दार्शनिक निश्चितता के साथ ज्ञात कर सकते हैं कि सभी मनुष्य नश्वर हैं, वह एकमात्र मार्ग है मरणोपरांत—अर्थात, यदि सभी मृत्यु को प्राप्त हो जाए।

परन्तु हम आँकड़ों और चरम सम्भावना के आधार पर यह मान लेते हैं, कि सभी मनुष्य नश्वर हैं और सुकरात भी एक मनुष्य थे। हो सकता है कि सुकरात प्लेटो की कल्पना की उपज हों। हो सकता है कि सुकरात किसी अन्य ग्रह से आए हों। ये निराधार, अजीबोगरीब सम्भावनाएँ हैं, परन्तु हम निश्चित रूप से नहीं जानते कि सुकरात एक मनुष्य थे। परन्तु यहाँ युक्तिवाक्य का महत्व है। यदि सभी मनुष्य नश्वर हैं, यदि यह आधार सत्य है और यदि सुकरात एक मनुष्य हैं, यदि यह आधार भी सत्य है, तो हम पूर्ण निश्चितता के साथ जानते हैं कि सुकरात नश्वर थे। यह निगमनात्मक पक्ष, औपचारिक पक्ष,

हमें एक पूर्ण निष्कर्ष की निश्चितता देता है जो आधार से प्रदर्शनात्मक रूप से सिद्ध होता है। यह न केवल प्राकृतिक विज्ञान के लिए वरन् धर्मशास्त्रीय विज्ञान के लिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

मेरा उद्देश्य आपके मन में उन बातों के विषय में सन्देह उत्पन्न करना नहीं है जिन्हें आप देखते हैं, सुनते हैं और अनुभव करते हैं। उदाहरण के लिए, मैं विश्वास करता हूँ और मानता हूँ कि मैं अपने आस-पास क्या हो रहा है, उसे देखने और सुनने के लिए जिन इन्द्रियों का उपयोग करता हूँ, यद्यपि वे परिपूर्ण और अचूक नहीं हैं, तथापि वे विश्वसनीय हैं। और मेरा मानना है कि मैं अपनी धारणाओं के अनुसार कार्य करने के लिए नैतिक रूप से उत्तरदायी हूँ।

हम विज्ञान या इन्द्रिय बोध के विषय में सन्देह के समुद्र में नहीं बहना चाहते। हम प्राणी के रूप में इसी प्रकार निर्मित किए गए हैं। जैसा कि हमने पहले देखा, हमारे मन से बाहर के संसार में जाने का एकमात्र पारगमन, प्रवेशमार्ग इन्द्रियों के माध्यम से है। और इसलिए, मैं इन्द्रिय बोध पर बहुत अधिक महत्व देता हूँ, जैसा कि बाइबल और विज्ञान करता है। यद्यपि, हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारी इन्द्रिय बोध की सीमाएँ हैं।

अध्याय छह

# तर्क के नियम

## *The Laws of Logic*

जैसा कि हम मसीही व्यक्ति और मन के अपने अध्ययन को बनाए रखते हैं, मैं सत्रहवीं शताब्दी में डेसकार्टेस के कार्य के महत्व के विषय में कुछ और अवलोकन करना चाहता हूँ। हमें स्मरण है कि हर उस वस्तु पर सन्देह करने की अपनी कठिन प्रक्रिया के उपरान्त, जिस पर वह सन्देह कर सकता था, उसने निष्कर्ष निकाला, "चूँकि मैं विचार करता हूँ; इसलिए मैं हूँ।" सन्देह करने के लिए, उसने तर्क दिया, मुझे विचार करना होगा। और विचार करने के लिए, मेरा अस्तित्व होना चाहिए। और यदि मुझे सन्देह है कि मैं विचार कर रहा हूँ, तो मुझे सन्देह करने के लिए भी विचार करना होगा। इस बात पर सन्देह करने के लिए कि मैं सन्देह कर रहा हूँ, यह आवश्यक है कि मैं सन्देह कर रहा हूँ कि मैं सन्देह कर रहा हूँ। इसलिए चाहे मैं इसे कैसे भी समझूँ, मैं इस

निष्कर्ष से बच नहीं सकता कि मैं सन्देह कर रहा हूँ और यदि मैं सन्देह कर रहा हूँ, तो विचार कर रहा हूँ और यदि मैं विचार कर रहा हूँ, तो मैं हूँ।

अब डेसकार्टेस निश्चितता के उस आधार तक पहुँचना चाहते थे, जहाँ वे ऐसी कोई भी बात नहीं मान रहे थे जिसे चुनौती नहीं दी जा सकती। परन्तु उनके लिए यह सम्पूर्ण रूप से निश्चित होना कि विचार करने का अर्थ है कि उनका अस्तित्व है, उन्हें दो सिद्धान्तों को मानना होगा और वो दोनों एक दूसरे से निकट रूप से सम्बन्धित हैं।

पहला है विरोधाभास का नियम। यह नियम बताता है कि *A* एक ही समय और सम्बन्ध में *A* और गैर-*A* नहीं हो सकता। अर्थात, एक वस्तु या प्रस्ताव एक ही समय और एक ही सम्बन्ध में वह नहीं हो सकता जो वह है और वह नहीं हो सकता जो वह है। हम *A* और गैर-*A* प्रतीकों का उपयोग एक प्रकार के दार्शनिक आशुलिपि रूप में करते हैं।

एक व्यक्ति एक ही समय में *A* और *B* हो *सकता* है। मैं एक ही समय में पिता और पुत्र हो सकता हूँ, परन्तु एक ही सम्बन्ध में नहीं। अब, जब डेसकार्टेस कहते हैं, “मैं विचार करता हूँ; इसलिए मैं हूँ,” तो वे विरोधाभास के नियम को मानते हैं। वे मानते हैं कि यदि वे विचार कर रहे हैं, तो वे उसी समय पर, उसी प्रकार से नहीं विचार *नहीं* कर रहे हैं। आप एक ही समय में और एक ही सम्बन्ध में विचार करना और नहीं विचार करना दोनों नहीं कर सकते। आप एक ही सम्बन्ध में एक ही समय पर सन्देह करना और सन्देह नहीं करना दोनों नहीं कर सकते। और इसलिए वे एक तर्कसंगत सिद्धान्त या तर्कसंगत

विधि, विचार के एक तर्कसंगत रूप की वैधता को मानते हैं। इसलिए हम इसे एक औपचारिक सिद्धान्त कहते हैं।

दूसरा सिद्धान्त जिसे डेसकार्टेस मानते हैं वह है कार्य-कारण का नियम, क्योंकि जब वे कहते हैं, "मैं विचार करता हूँ; इसलिए मैं हूँ," तो वे यह मान रहे हैं कि विचार के लिए विचारक की आवश्यकता होती है अथवा सन्देह के लिए सन्देह करने वाले की आवश्यकता होती है। अर्थात, विचार कुछ ऐसा है जो घटित होता है जिसके लिए किसी पूर्ववर्ती कारण की आवश्यकता होती है। किसी वस्तु को उस विचार का कारण बनना पड़ता है; किसी वस्तु को उस सन्देह का कारण बनना पड़ता है। डेसकार्टेस कहते हैं कि यह उनका अपना अस्तित्व है।

आज लोग विचार कर सकते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी में डेसकार्टेस कार्य-कारण के नियम जैसे सिद्धान्त को मानने में नासमझ थे क्योंकि अब हम जानते हैं कि आगामी शताब्दी में स्कॉटिश दार्शनिक डेविड ह्यूम *(David Hume)* कार्य-कारण की एक व्यापक आलोचना प्रस्तुत करेंगे। दुर्भाग्य से, आज लोग निश्चिंत हो सकते हैं कि हमें अब कार्य-कारण के नियम की वैधता को मानने की आवश्यकता नहीं है।

मेरी अपनी पुस्तक *नॉट ए चांस (Not a Chance)* में, मैं अतीत के लोगों से जुड़ता हूँ, जिनमें सबसे उल्लेखनीय बर्ट्रेंड रसेल *(Bertrand Russell)* हैं। अपनी पुस्तक *व्हाई आई एम नॉट ए क्रिस्चियन (Why I Am Not a Christian)* में, रसेल ने तर्क दिया कि उन्हें एक युवा व्यक्ति के रूप में यह विश्वास दिलाया गया था कि वे ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करने की तार्किक अनिवार्यता से बच नहीं सकते क्योंकि उन्होंने सोचा था कि यदि अभी किसी वस्तु का आस्तित्व है, तो किसी न किसी को इसका कारण होना

चाहिए। ईश्वर के अस्तित्व के लिए पुराने कारण संबंधी तर्क ने रसेल को एक बच्चे के रूप में यह विश्वास दिलाया कि ईश्वर का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए।

तत्पश्चात्, जब वे किशोरावस्था में थे, तो उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल *(John Stuart Mill)* द्वारा लिखा एक निबन्ध पढ़ा जिसमें मिल ने ईश्वर के अस्तित्व के लिए पारम्परिक तर्क पर आपत्ति जताई थी। मिल ने कहा कि यह तर्क कार्य-कारण के नियम की अवधारणा पर आधारित है। परन्तु यदि कार्य-कारण का नियम सत्य है और समस्त वस्तुओं का एक कारण होना चाहिए, तो स्पष्ट रूप से, ईश्वर का भी एक कारण होना चाहिए। इसलिए किसी और वस्तु के अस्तित्व से ईश्वर के अस्तित्व का अनुमान लगाने की कोई तर्कसंगत आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यदि हर वस्तु के लिए एक कारण की आवश्यकता होती है, तो ईश्वर को भी एक कारण की आवश्यकता होगी और जो कुछ भी ईश्वर का कारण बनता है, उसके लिए भी एक कारण की आवश्यकता होगी और हम *अनन्त तक* (अनन्त प्रतिगमन) चलते रहेंगे।

परन्तु जॉन स्टुअर्ट मिल ने एक आधारभूत भूल की। और मिल की भूल ने रसेल को तब प्रभावित किया जब रसेल अठारह वर्ष के थे और रसेल अपने गुरु के इस भूल निष्कर्ष से कभी भी उबर नहीं पाए।

परन्तु यह बहुत साधारण समस्या है। वे कार्य-कारण के नियम की असत्य, त्रुटिपूर्ण और अमान्य परिभाषा पर कार्य कर रहे थे। कार्य-कारण का नियम यह पुष्टि नहीं करता कि हर वस्तु का एक कारण होना चाहिए। कार्य-कारण का नियम जिसकी पुष्टि करता है वह इससे कहीं अधिक सरल है; यह कहता है कि हर प्रभाव का एक कारण होना चाहिए। क्या आपको अन्तर दिखता है? यदि मैं कहता हूँ कि *जो कुछ भी आस्तित्व में है* उसका एक कारण

होना चाहिए और यह ईश्वर और अन्य समस्त वस्तुएँ पर लागू होता है, तो हमारे पास अनन्त प्रतिगमन की व्यर्थता रह जाती है।

परन्तु यदि आप कहते हैं कि हर *प्रभाव* का एक कारण होना चाहिए, तो एकाएक कार्य-कारण के सिद्धान्त का मूल्य घट जाता है क्योंकि "हर प्रभाव का एक कारण होना चाहिए" कथन को हम औपचारिक सत्य अथवा विश्लेषणात्मक सत्य कहते हैं। अथवा, इसे सरल बनाने के लिए, यह एक ऐसा कथन है जो परिभाषा के अनुसार सत्य है; यह अपने आन्तरिक तर्क की शक्ति के कारण सत्य है। क्योंकि एक प्रभाव को, एक प्रभाव होने के लिए, वह वस्तु बनना पड़ता है जिसका एक कारण होता है। अर्थात, एक प्रभाव की परिभाषा वह है जिसका एक कारण होता है। और कारण की परिभाषा यह है कि जो प्रभाव उत्पन्न करता है। इसलिए यदि कोई प्रभाव नहीं है, तो कोई कारण नहीं हो सकता। यदि कोई कारण नहीं है, तो कोई प्रभाव नहीं हो सकता। तथापि, इसके विपरीत, यदि कोई प्रभाव है, तो उसका कोई कारण होना चाहिए। और यदि कोई कारण है, तो उसका कोई प्रभाव अवश्य होना चाहिए। बिना कारण वाला प्रभाव कोई प्रभाव नहीं है और बिना प्रभाव वाला कारण कोई कारण नहीं है।

जॉन गेर्स्टनर *(John Gerstner)* और आर्थर लिन्डस्ले *(Arthur Lindsley)* के साथ मिलकर लिखी गई पुस्तक *क्रिश्चियन एपोलोजेटिक्स (Christian Apologetics)* में मैंने कार्य-कारण का उल्लेख किया है। और एक विशेष पत्रिका की समीक्षा में, एक मसीही दार्शनिक ने मेरे तर्क पर एक आपत्ति जताई। उन्होंने कहा कि स्प्रोल के साथ समस्या यह है कि स्प्रोल अकारण प्रभाव की अनुमति नहीं देंगे। और मैंने उन्हें संक्षेप में उत्तर देते हुए

कहा: "आपने उचित समझा। आप पूर्णतया यथोचित हैं। स्प्रोल अकारण प्रभाव की अनुमति नहीं देंगे। परन्तु आप इसे एक समस्या के रूप में उद्धृत करते हैं और मुझे लगा कि यह एक गुण है।"

मैंने कहा कि यदि वह प्रकृति या इतिहास से अकारण प्रभाव का एक उदाहरण दे सके तो मैं अपने इस अभिकथन से पीछे हटने को इच्छुक हूँ कि अकारण प्रभाव जैसी कोई वस्तु नहीं होती है। जैसे ही उन्होंने देखा कि उन्होंने क्या कहा था, उन्हें समझ में आया कि अकारण प्रभाव एक निरर्थक कथन है। यह औपचारिक रूप से असम्भव है। यह स्पष्ट रूप से अतार्किक है।

जब हम कार्य-कारण के नियम को ठीक से समझते हैं, जैसा कि कहा गया है कि "प्रत्येक प्रभाव के लिए, एक पूर्ववर्ती कारण होता है," तो हम देखते हैं कि यह नियम केवल विरोधाभास के नियम का विस्तार है; यह इस धारणा पर आधारित है कि जो एक प्रभाव है, वह एक ही समय में और एक ही सम्बन्ध में प्रभाव *होना* और प्रभाव *नहीं होना* दोनों नहीं हो सकता। और जो एक कारण है, वह एक ही समय में और एक ही सम्बन्ध में कारण होना और कारण नहीं होना दोनों नहीं हो सकता।

अब, हम विचार और ज्ञान के प्राथमिक सिद्धान्तों और वस्तुओं के विषय में बौद्धिक स्पष्टता प्राप्त करने के विषय में बात कर रहे हैं। डेसकार्टेस ने इन मान्यताओं के मुद्दे पर अधिक महत्व नहीं दिया क्योंकि डेसकार्टेस ने न केवल विरोधाभास के नियम की वैधता को माना, वरन् उन्होंने इसे किसी भी वस्तु के विषय में विचार-विमर्श के लिए एक आवश्यक मान्यता के रूप में भी समझा।

हर बार जब मैं विरोधाभास के नियम के विषय में बात करता हूँ, तो मसीही समुदाय का कोई व्यक्ति आपत्ति जताता है: "आर.सी., क्या आप मसीही विश्वास में एक मूर्तिपूजक विचारधारा नहीं ला रहे हैं जिसका आविष्कार अरस्तू ने किया था? क्या अरस्तू तर्क की पहली शास्त्रीय प्रणाली के जनक नहीं हैं? और क्या पुराने नियम में यहूदी विचार और शास्त्रीय यूनानी दर्शन में पाई जाने वाली वस्तुएँ के प्रति अमूर्त, तार्किक, अथक, निगमनात्मक दृष्टिकोण के मध्य बहुत अधिक अन्तर नहीं है? क्या यह मसीही विचारधारा में मूर्तिपूजक विचारधारा के घुसपैठ का एक और उदाहरण नहीं है?"

मेरा उत्तर है, मुझे लगता है कि आप यहाँ अरस्तू को बहुत अधिक श्रेय दे रहे हैं और इसके विपरीत, मुझे बहुत अधिक दोष दे रहे हैं, क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि अरस्तू ने तर्क का आविष्कार किया या तर्क का निर्माण किया, ठीक उसी रीति से जितना कि मैं यह नहीं मानता कि कोलंबस ने अमेरिका का आविष्कार किया या अमेरिका का निर्माण किया। कोलंबस ने जो किया वह कुछ ऐसा खोजना था जो पहले से ही उपस्थित था। और अरस्तू जो कुछ करने की चेष्टा कर रहे थे, वह विचार के नियमों को परिभाषित करना था, जो पहले से ही तर्कसंगतता में, उन प्राणियों में निर्मित थे जिनके पास बुद्धि है।

हम जानते हैं कि अरस्तू एक महान् लेखक थे और उनकी बौद्धिक खोज का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने नैतिकता, सौंदर्यशास्त्र, भौतिकी, जीव विज्ञान, दर्शनशास्त्र और कई अन्य कार्यक्षेत्रों की जाँच की। उन्होंने इनमें से कई को विभिन्न विज्ञानों की खोज के रूप में पहचाना। परन्तु

उन्होंने तर्क को विज्ञान नहीं माना। वरन्, उन्होंने तर्क को सभी विज्ञानों का *ऑर्गनॉन (organon)* कहा। हम यूनानी *ऑर्गनॉन* का अनुवाद "साधन" या "उपकरण" के रूप में करते हैं। अरस्तू ने कहा कि तर्क केवल एक उपकरण है जिसका उपयोग एक व्यक्ति करता है जो इन सभी अन्य क्षेत्रों में बुद्धि और ज्ञान की खोज कर रहा है।

उन्होंने कहा कि तर्क केवल विचार का एक उपकरण अथवा साधन नहीं है वरन् समझदारीपूर्ण प्रवचन के लिए उपलब्ध एक आवश्यक उपकरण है। अर्थात, एक दूसरे से समझदारी से बात करने में सक्षम होने के लिए तर्क हमारे लिए आवश्यक है।

कई वर्ष पहले मैंने ईश्वरविज्ञान के छात्रों के एक वरिष्ठ वर्ग को दार्शनिक ईश्वरविज्ञान पढ़ाया था। दार्शनिक इमैनुअल कांट को पढ़ाते समय, हमने सत्य और प्रस्तावों की प्रकृति पर चर्चा की। जब मैंने खड़िया का एक टुकड़ा उठाया, तो मैंने अपने छात्रों से पूछा: "यह किस प्रकार का प्रस्ताव है? *यह खड़िया का टुकड़ा, खड़िया का टुकड़ा नहीं है।* आपने इससे क्या सीखा है? जब मैं कहता हूं, 'यह खड़िया का टुकड़ा, खड़िया का टुकड़ा नहीं है' तो मेरा क्या अर्थ है?"

कक्षा के प्रस्थान भाषण देने वाले छात्र ने कहा, "आपके कहने का अर्थ यह है कि आपके हाथ में जो खड़िया का टुकड़ा है, वह वास्तव में खड़िया का टुकड़ा नहीं है।" और मैंने पूछा, "कौन सा खड़िया का टुकड़ा?" उन्होंने कहा, "आपके हाथ में जो खड़िया का टुकड़ा है।" मैंने कहा: "परन्तु यह पूर्णतया

वही खड़िया का टुकड़ा है जिसके विषय में मैं बात कर रहा हूँ। यह विशिष्ट खड़िया का टुकड़ा खड़िया का टुकड़ा नहीं है।” तब उसने कहा, “मुझे नहीं पता कि आपके कहने का क्या अर्थ है।”

उस दिन संस्थान के अध्यक्ष कक्षा में आए हुए थे, इसलिए मैंने उनसे पूछा: “अध्यक्ष महोदय, क्या आप हमारी सहायता कर सकते हैं? छात्र ‘यह खड़िया का टुकड़ा खड़िया का टुकड़ा नहीं है’ कथन के महत्व और अर्थ को नहीं समझते हैं। मेरा इससे क्या अर्थ है?” अध्यक्ष ने कहा, “आप जिस विषय में बात कर रहे हैं, उसका सम्बन्ध पदार्थ और आकस्मिक घटनाओं से है, पुरानी आध्यात्मिक समस्या। आप कह रहे हैं कि आपके हाथ में जो खड़िया का टुकड़ा है, उसमें खड़िया सम्बन्धित घटनाएँ जुड़ी हुई हो सकती हैं, परन्तु उसमें खड़िया सम्बन्धित सार नहीं है।” मैंने उत्तर दिया: “परन्तु मैं यहाँ खड़िया के आकस्मिक टुकड़े की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं यह कह रहा हूँ कि मेरे हाथ में जो मूलभूत खड़िया है, वह मूलभूत खड़िया सम्बन्धित सार नहीं है।” उन्होंने कहा, “तब तो, मुझे नहीं पता।”

मैं देख सकता था कि कक्षा में एक छात्र इस चर्चा से और भी अधिक निराश हो रहा था। मैंने उससे पूछा कि वह इस चर्चा के विषय में क्या विचार करता है। उसने कहा, “आप जो कह रहे हैं वह एक निरर्थक कथन है।” और मैंने कहा, “धन्यवाद, प्रभु परमेश्वर; इस कक्षा में हमारे पास एक संवेदनशील प्राणी बचा है।” दूसरे शब्दों में, यह पुरुष न केवल शिक्षित था, वरन् वह

जानता था कि लोग शब्दों के साथ कैसे खेल खेलते हैं और वह इसका मूल कारण भी समझता था। विरोधाभास के नियम से सशस्त्र किसी भी व्यक्ति को इसे तुरन्त विरोधाभास के नियम का उल्लंघन और एक निरर्थक कथन के रूप में पहचान लेना चाहिए था। मेरा कथन किसी भी तर्कसंगत मन के लिए समझ से बाहर था।

परन्तु आप देखिए, मेरे छात्रों को मुझ पर इतना भरोसा था कि वे यह नहीं विचार करते थे कि मैं उन्हें धोखा दूँगा। वे कुछ और अधिक गहन, कुछ अधिक गहन की खोज में थे। परन्तु मैं उन्हें यह सिखाने की चेष्टा कर रहा था कि आपके नाम के उपरान्त चाहे कितनी भी डिग्रियाँ क्यों न जुड़ी हों, विरोधाभास फिर भी विरोधाभास ही है और यह एक निरर्थक कथन है और चाहे आपके पास कितनी भी शिक्षा क्यों न हो, आपके पास निरर्थक कथनों के साथ दिन व्यतीत करने का अधिकार नहीं है। यह डेसकार्टेस के निष्कर्ष का एक भाग है। आगामी अध्याय में, हम देखेंगे कि यह सब ईश्वर की वास्तविकता के लिए डेसकार्टेस के तर्क के सम्बन्ध में कैसे यथोचित बैठता है।

तर्क के नियमों पर चर्चा करना जटिल और निराकार लग सकता है, परन्तु हम यहाँ केवल विचार करने और बोलने के मूल सिद्धान्तों के विषय में बात कर रहे हैं, जिससे कि, लोग एक साथ बात करते हुए सार्थक चर्चा कर सकें।

मुझे पता है कि यह सब निराकार लग सकता है। परन्तु बहुधा, हम

अपने विचार, दर्शन और धर्मशास्त्र में आरम्भ में ही ज्ञान के मूलभूत विषयों पर आधार खो देते हैं। और समय-समय पर, हमें मूल बातों पर वापस जाने की आवश्यकता है, उन बातों पर वापस जिसे हम सत्य के मूलभूत सिद्धान्त कहते हैं।

अध्याय सात

# तर्कसंगतता और तर्कवाद

## *Rationality and Rationalism*

दार्शनिक रेने डेसकार्टेस के साथ बिताए अपने समय में, हमने सोचा है कि कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व के निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इस प्रकार का बौद्धिक व्यायाम क्यों करेगा। इसका उत्तर यह है कि डेसकार्टेस मसीही विश्वास की केन्द्रीय पुष्टि के लिए एक आधार स्थापित करना चाहते थे: ईश्वर का अस्तित्व।

हमें यह भी समझना चाहिए कि डेसकार्टेस अपने समय में गणित के क्षेत्र में अपने कार्य के लिए सम्भवतः उतने ही प्रसिद्ध थे जितने कि एक दार्शनिक के रूप में। आधुनिक विज्ञान में कई सबसे अविश्वसनीय प्रगति बहुधा गणितज्ञों के कार्यों से प्रेरित रही हैं।

उदाहरण के लिए, कोपरनिकस ने पृथ्वी-केन्द्रितता की अवधारणा को चुनौती दी। अर्थात्, पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है, अथवा अधिक से अधिक सौरमण्डल का केन्द्र है। उन्होंने इस अवधारणा को चुनौती दी कि सूर्य सौर मण्डल में एक निश्चित केन्द्र के चारों ओर घूमता है और वह निश्चित केन्द्र पृथ्वी है। कोपरनिकस ने प्राचीन मान्यताओं को नष्ट करने का कार्य किया, जिन्हें प्राचीन काल के टॉलैमीक *(Ptolemaic)* दार्शनिकों द्वारा जटिल गणितीय शैली से उद्यत किया गया था। उन्होंने पृथ्वी-केन्द्रीयता को सूर्य-केन्द्रीयता से प्रतिस्थापित कर दिया, अर्थात, सूर्य सौरमण्डल का केन्द्र है और ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं।

आज हमारे लिए यह समझना दुष्कर है कि उस समय यह कितना क्रान्तिकारी विषय था। कलीसिया के बिशपों ने गैलीलियो की दूरबीन में देखने से अस्वीकार कर दिया था और अंततः गैलीलियो की निन्दा की जब गैलीलियो ने अनुभवजन्य साक्ष्य के द्वारा कोपरनिकीय सिद्धान्त की पुष्टि करने की चेष्टा की। उन्होंने मान लिया था कि बाइबल सिखाती है कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है क्योंकि बाइबल की भाषा में सूर्य को आकाश में घूमते हुए वर्णित किया गया है। जहाँ पर हम खड़े होते हैं वहाँ से जब आकाश की ओर देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम स्थिर हैं और सूर्य क्षितिज पर घूम रहा है। यह पूर्व में उगता है और पश्चिम में अस्त हो जाता है।

इतना ही नहीं, वरन् यदि तेरहवीं शताब्दी में कोई कहता, "हम एक ऐसी सतह पर खड़े हैं जो एक चक्र में घूम रहा है और संसार गोल है और यह घूम रहा है," तो आप पूछते, "तो मैं क्यों नहीं गिरा?" उन दिनों लोगों को केन्द्रत्यागी बल और केन्द्राभिमुखी बल के विषय में ज्ञात नहीं था और इसलिए वे अपने चारों ओर के संसार के विषय में अपने निर्णय मुख्य रूप से इस आधार पर करते थे कि वे क्या देख सकते हैं।

तो कोपरनिकस ऐसी किसी वस्तु को चुनौती क्यों देगा जो वैज्ञानिक और दार्शनिक परम्परा में और एक व्यक्ति के सामान्य अनुभव के सन्दर्भ में इतनी गाढ़ रूप से स्थापित थी? कोपरनिकीय क्रान्ति को समझने की कुंजी यह पहचानना है कि कुछ पूर्व खगोलविद गणित की दुष्कर व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं थे जिसका उपयोग विज्ञान की पुरानी भविष्यवाणियों को यथोचित प्रमाणित करने के लिए किया जा रहा था। यह गणितज्ञ ही थे जिन्होंने अनुभव किया कि यदि वे पृथ्वी के स्थान पर सूर्य को केन्द्र में अवस्थित मानते हैं तो वे वर्तमान के जटिल गणित को सरल बना सकते हैं।

एक बार जब उन्होंने गणित के विषय को ठीक कर लिया, तो उन्होंने हमारे सौरमण्डल में अवस्थित विभिन्न ग्रहों की सूर्य से दूरी का आनुपातिक अनुपात देखना आरम्भ कर दिया। फिर बाद में गणितज्ञों ने अपनी गणनाओं का उपयोग किया और इन जटिल अनुपातों पर कार्य किया और अनिवार्य रूप से कहा, "यदि हमारी गणना दोष-रहित है और यह गणित सुसंगत रीति से कार्य करता है, तो यहाँ कहीं एक और ग्रह होना चाहिए।" जब उन्होंने

दूरबीन को आकाश के उस क्षेत्र में इंगित किया ( दूरबीन का आविष्कार हो जाने के उपरान्त), तो उन्होंने ठीक उसी स्थान पर एक और ग्रह की खोज की जहाँ गणित ने उन्हें बताया था कि यह ग्रह यहीं अवस्थित होगा। इसलिए, इस ब्रह्माण्ड की विशालता में हमारी स्थिति को समझने में यह महान कदम आरम्भ में गणितज्ञों द्वारा प्रेरित किया गया था।

और न्यूटोनियन भौतिकी के विषय में क्या कहें? आइजैक न्यूटन *(Isaac Newton)* एक विशेषज्ञ गणितज्ञ थे। हमारी अपनी पीढ़ी के विषय में क्या कहें, जिसे कुछ लोग “परमाणु युग” के रूप में वर्णित करते हैं? परमाणु भौतिकी ने हमारे जीने और सोचने की शैली और जिस ब्रह्माण्ड में हम रहते हैं उसे समझने की शैली में क्रान्ति ला दी है। इसके पीछे का प्रतिभाशाली व्यक्ति अल्बर्ट आइंस्टीन *(Albert Einstein)* थे, जो गणित के क्षेत्र में एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

अब, गणित क्या है? यह केवल अंकगणित नहीं है, वरन् यह कुछ ऐसा है जिसमें संख्याएँ सम्मिलित हैं। हमने प्रारंभिक गणित में सीखा है कि दो और दो चार होते हैं। पहला प्रश्न जो मैं पूछना चाहता हूँ, वह है, “*क्या* दो और *क्या* दो *क्या* चार होते हैं?” इसका उत्तर है, “इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।” यह सेब अथवा हाथी भी हो सकते हैं। यदि आपके पास दो सेब हैं और आप उन दो सेबों में दो सेब और जोड़ते हैं, तो अन्त में आपके पास कितने सेब होंगे? चार। और हाथी के साथ भी यही विषय है। इसलिए जब हम सरल, प्रारम्भिक

गणित में बात करते हैं, तो हम सेब और हाथी जैसी विभिन्न इकाइयों के विषय में ठोस और विशिष्ट नहीं होते हैं। हम इसे केवल गणितीय सूत्र में परिवर्तित कर देते हैं। और यह संख्या *2* एक प्रतीक है, जैसा कि संख्या *4* और = चिह्न है।

सूत्र 2 + 2 = 4 में जो कुछ है, वह एक प्रतीकात्मक निरूपण है जिसे हम एक *पुनरुक्ति* कहते हैं। पुनरुक्ति एक कथन है जिसमें विधेय सूचना के सन्दर्भ में कर्ता में कुछ भी नया नहीं जोड़ता है। पुनरुक्ति कथन का एक उदाहरण है "एक कुँवारा एक अविवाहित पुरुष है।" अविवाहित पुरुषत्व का पूरा विचार पहले से ही *कुँवारे* शब्द में समाहित है। जब हम विधेय "अविवाहित पुरुष" का उपयोग करते हैं तो हमें कोई नई जानकारी नहीं मिलती है। सूत्र 2 + 2 = 4 में एक औपचारिक सत्य की पुष्टि की गई है। इसे सरल शब्दों में कहें तो, गणित एक परिष्कृत प्रकार का प्रतीकात्मक तर्क है। अर्थात समीकरण के दोनों पक्षों का सम्बन्ध एक *तर्कसंगत* सम्बन्ध है। यदि मैं कहता हूँ 2 + 3 = 4, तो मेरे पास अब एक अपरिमेय सूत्र है क्योंकि यह असंगत है; यह तर्क के नियमों का उल्लंघन करता है। गणित जो करता है वह प्रतीकात्मक रीति से तर्क और तर्कसंगतता को व्यवस्थित रूप से लागू करता है।

मैं इस बिन्दु पर एक कारण से महत्व दे रहा हूँ। सत्रहवीं शताब्दी में संकल्पनवाद नामक एक सिद्धान्त उभरा, जो सत्रहवीं शताब्दी के प्रमुख आन्दोलन का एक चरम रूप था जिसे तर्कवाद के रूप में जाना जाता है। संकल्पनवाद ने तर्कवाद के सिद्धान्तों को चरम पर पहुँचा दिया। संकल्पनवाद

के अनुयायियों ने तर्क दिया कि जो कुछ भी आन्तरिक रूप से सुसंगत और तार्किक माना जा सकता है, वह वास्तविकता में निहित होना चाहिए। इसलिए, उदाहरण के लिए, लोगों ने समस्त संसार में इकसिंगा की खोज की क्योंकि उन्होंने कहा, "एक इकसिंगा ऐसा पशु नहीं है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।" और जो कुछ भी तर्कसंगत रूप से माना जा सकता है, वह वास्तविक संसार में निहित होना चाहिए। (यह ईश्वर के अस्तित्व के लिए शास्त्रीय तर्कों में से एक से सम्बन्धित है, जिसे हम बाद में खोजेंगे।)

बीसवीं सदी के दृष्टिकोण से इसे देखते हुए, हम सोचते हैं, "यह मूर्खतापूर्ण है।" मन में अन्यमनस्कता का प्रयोग करने, श्रेणियों का विस्तार करने की क्षमता है। मैं विभिन्न पशुओं को देखता हूँ और मैं देखता हूँ कि बहुत से पशुओं के पैर होते हैं और वास्तव में, उनमें से लगभग सभी के पैर होते हैं। फिर मैं कुछ ऐसे पशुओं को देखता हूँ जिनके चार पैर होते हैं और मैं एक चार पैरों वाले पशु, घोड़े की कल्पना कर सकता हूँ। मेरे मन में घोड़े के होने का एक विचार है। परन्तु मैं गैंडे के बारे में भी जानता हूँ, जिसके नाक के ठीक सामने एक बड़ा सींग होता है। और इसलिए मुझे बस गैंडे से सींग का विचार स्थानांतरित करना है और इसे घोड़े की नाक पर लगाना है। और मेरे पास एक इकसिंगा है। इकसिंगा के विचार के बारे में कुछ भी तर्कहीन नहीं है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि इकसिंगा का आस्तित्व न हों। परन्तु कौन कहेगा कि केवल इसलिए कि हम एक पृष्ठ पर लक्ष्यहीन चित्रकारी बना सकते हैं और

एक प्रकार के पशु से दूसरे प्रकार के पशु में शरीर के अंगों को स्थानांतरित कर सकते हैं, इसलिए इन पशुओं का अस्तित्व हैं? बहुत कम समय के लिए, लोगों का मानना था कि यदि आप इसे तर्कसंगत रूप से समझ सकते हैं, तो इसका अस्तित्व होना ही चाहिए।

यह तर्क इसलिए अस्तित्व में आया क्योंकि लोगों को गणित पर बहुत भरोसा होने लगा था। चूँकि गणित एक तर्कसंगत, तार्किक विज्ञान है जो अवधारणाओं को औपचारिक बनाता है और चूँकि गणित ने सभी प्रकार की वस्तुओं की खोज की है, इसलिए लोगों का उस विशेष विषय पर बहुत अधिक भरोसा बढ़ गया था। गणित एक ऐसा विज्ञान है जो स्वाभाविक रूप से तर्कसंगत है। जब मैं आज हमारी संस्कृति को देखता हूँ और पाता हूँ कि हमने पूर्वी धर्म और अस्तित्व दर्शन और सापेक्षवाद की तर्कहीनता को कैसे अपनाया है, तो मैं पूछता हूँ, "कौन हमें इस बेतुकेपन में डूबने से बचाएगा?" मुझे नहीं लगता कि यह दार्शनिक होंगे, क्योंकि वे इसका आनन्द ले रहे हैं। और संभवतया धर्मशास्त्री भी नहीं होंगे, क्योंकि हमने धर्मशास्त्र को तर्कहीनता को अपनाते देखा है। परन्तु एक स्थान जहाँ तर्कहीनता कार्य नहीं करती है वह है कंप्यूटर स्क्रीन। यदि हम प्रौद्योगिकी के इस विस्फोट को प्रवृत्त रखने जा रहे हैं, तो हम गणित की मौलिक, तर्कसंगत स्थिरता को नहीं छोड़ सकते। मैं वैज्ञानिकों, प्रकृतिवादियों से आशा करता हूँ कि वे हमें इस व्यापक तर्कहीनता की आत्मा से बचाएँ।

फिर से, हम स्मरण करते हैं कि डेसकार्टेस दार्शनिक बनने से पहले गणितज्ञ थे। तर्कवाद के जनक के रूप में, वे गणित द्वारा दिए गए सत्य की खोज कर रहे थे। यह निष्कर्ष कि 2 + 2 = 4 एक प्रतिरोधविहीन तर्क से उद्धृत है; यह निर्विवाद है। (जो लोग कहते हैं कि वे गणितीय रूप से प्रमाणित कर सकते हैं कि 2 + 2 = 5, वे शब्दों के अर्थ को परिवर्तित कर देते हैं, जिसे हम अस्पष्टता की समस्या कहते हैं।)

डेसकार्टेस एक स्पष्ट और पृथक विचार की खोज कर रहे थे जिसकी सत्यता पर सन्देह नहीं किया जा सकता था, एक औपचारिक पुष्टि जो निश्चित थी, जिससे वह फिर सभी सत्य का अनुमान लगा सकते थे। हम इसे *पूर्वोक्त* विचार कहते हैं। *पूर्वोक्त* का अर्थ है “अनुभव से पहले।” मुझे कुछ अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है; मैं इसे अनुमान से, विशुद्ध तार्किक अनुमान से ज्ञात कर सकता हूँ।

डेसकार्टेस सभी वास्तविकताओं के केन्द्रीय सत्यों का निगमन,अनुभव से पूर्व ही, बिना देखे, चखे, छुए, सूँघे या सुने, करना चाहते थे। और इसलिए उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व की सच्चाई को स्थापित करने के लिए यही प्रक्रिया अपनाई।

बच्चों के विकास के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रम में गणित पर महत्व दिए जाने का एक कारण है। इस क्षेत्र में, किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में, बच्चों की तर्कसंगत सोच प्रक्रियाओं का विकास होता है। जब वे गणित का अध्ययन कर रहे होते हैं, तो उन्हें अनुभव नहीं होता कि वे वास्तव में तर्क के एक रूप

का अध्ययन कर रहे हैं। वे एक प्रकार के प्रतीकात्मक तर्क का अध्ययन कर रहे होते हैं, जहाँ समीकरण कुछ क्रियाओं और मात्राओं के अमूर्त प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व होते हैं। हमारे लिए यह देखना महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर ने हमें और जिस संसार में हम रहते हैं, उसे गणितीय आनुपातिकता की एक भव्य समरूपता के साथ निर्मित किया है। संसार की हमारी खोज की कुंजी इस विज्ञान का अनुप्रयोग है जो मन का उपयोग करता है।

## अध्याय आठ

# विश्वास और तर्क

## *Faith and Reason*

मैं एक मसीही शिक्षक और धर्ममण्डक के रूप में जो बात कहने की चेष्टा करता हूँ, वह यह है कि मसीही धर्म तर्कसंगत है। चाहे हम अपने मसीही अनुभव में वास्तविकता और विश्वास के महत्व को कितना भी स्वीकार कर लें, परन्तु एक मसीही के रूप में हमें जो विश्वास प्रदर्शित करने के लिए बुलाया गया है, वह कोई तर्कहीन विश्वास नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि उस मसीही व्यक्ति में कुछ सद्गुण है जो तर्क के विरुद्ध विश्वास की छलांग लगाता है। परन्तु बाइबल में कहीं भी परमेश्वर हमें अर्थहीनता की खाई में कूदने के लिए नहीं कहते हैं। हमें अंधेरे में छलांग लगाने के लिए नहीं कहा जाता है; हमें अंधेरे से निकलकर प्रकाश में आने के लिए कहा जाता है और परमेश्वर भ्रम का स्रोत नहीं है। विरोधाभास के दोनों

ध्रुवों की पुष्टि करने में कोई पुण्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ यह कहना है कि सत्य का स्रोत दोहरी भाषा बोलता है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक भाग के ईश्वरविज्ञानियों ने न केवल मसीही सत्य के अन्दर विरोधाभास की सम्भावना की पुष्टि की, वरन् इसे परिपक्व विश्वास के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में देखा। उदाहरण के लिए, कार्ल बार्थ *(Karl Barth)* ने अपनी पुस्तक *एपिस्टल टू द रोमन्स (Epistle to the Romans)* में कहा कि एक मसीही तब तक पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं होता है जब तक वह विरोधाभास के दोनों ध्रुवों की पुष्टि करने में सक्षम न हो। उन्होंने इसे परिपक्वता कहा। मैं इसे भ्रम कहता हूँ। उनके विश्वसनीय मित्र एमिल ब्रूनर *(Emil Brunner)* ने *ट्रुथ ऐज एनकाउंटर (Truth as Encounter)* लिखा, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि सत्य उदासीन, काल्पनिक प्रस्तावों से कहीं अधिक है, विशेष रूप से मसीही सत्य। मसीही सत्य प्रस्तावों की तार्किक सुसंगतता से नहीं वरन् व्यक्तिगत सम्बन्ध से सम्बन्धित है। सत्य में एक व्यक्ति-निष्ठ तत्व होता है जो अचूक होता है। और यह विषय पूर्णतया सत्य है। हम एक व्यक्तिगत सम्बन्ध, एक व्यक्ति-निष्ठ सम्बन्ध के विषय में चिन्तित हैं जो एक कर्त्ता के रूप में आपके और एक कर्त्ता के रूप में परमेश्वर के मध्य स्थापित है। ऐसा कहना एक विषय है, परन्तु जिसे हम आत्मनिष्ठावाद कहते हैं उसे अपनाना दूसरा विषय है, जो कहता है कि सत्य आपके द्वारा निर्धारित किया जाता है। ब्रूनर ने (अनुचित रूप से) तर्क दिया कि विरोधाभास ही सत्य की कसौटी है।

यदि विरोधाभास ही सत्य की कसौटी है, तब जब हम उस कथन को पतन के उस घटना पर प्रयुक्त करते हैं, जब सर्प हव्वा के पास आता है, तो क्या होता है? परमेश्वर ने आदम और हव्वा से कहा था, "जिस दिन तू उसमें से खाएगा उसी दिन तू अवश्य मर जाएगा।" यदि $A$ कार्यरत है, तो $B$ अनिवार्य रूप से प्रवेश लेगा। तब सर्प हव्वा के पास आता है और कहता है, "तुम निश्चय न मरोगे! परमेश्वर तो जानता है कि जिस दिन तुम उसमें से खाओगे, तुम्हारी आँखें खुल जाएंगी और तुम भले और बुरे का ज्ञान पाकर परमेश्वर के समान हो जाओगे।"

यदि हम इसे तार्किक प्रस्तावों में अनुवाद करते हैं, तो सर्प के कहने का तात्पर्य है, "यदि $A$ का अस्तित्व है, तो $B$ का नहीं।" जब परमेश्वर कहता हैं, "यदि $A$ का आस्तित्व है, तो $B$ उसका अनुगमन करेगा" और सर्प कहता हैं, "यदि $A$ का आस्तित्व है, तो $B$ का नहीं" तो हमारे पास उत्पत्ति 3 में स्पष्ट विरोधाभास का पहला अभिलेख प्रकट होता है। और हव्वा ने सर्प का कहना मान लिया। यह मानव अवज्ञा का पहला कार्य है जो समस्त संसार को पाप के पतन में डुबा देती है।

अब, आइए इस सिद्धान्त को प्रयुक्त करें कि विरोधाभास सत्य की कसौटी है। कल्पना करें कि हव्वा, चतुर होने के नाते, ब्रूनर के सिद्धान्त को समझती है कि विरोधाभास सत्य की कसौटी है और वह अपने विश्वास में परिपक्व होना चाहती थी। वह कहती है: "मैंने इस विरोधाभास को देखा, परन्तु ब्रूनर का कहना है कि यदि मुझे अपने विश्वास में परिपक्व होना है, तो मुझे विरोधाभास के दोनों ध्रुवों को अपनाने के लिए इच्छुक रहना होगा। केवल इतना ही नहीं, वरन् यदि ब्रूनर का कहना ठीक है, तो मैंने अभी जो इस सर्प से

सुना है वह एक विरोधाभास है और यही सत्य की कसौटी है। यदि विरोधाभास सत्य की कसौटी है और परमेश्वर सत्य का लेखक है, तो सर्प मुझसे जो कह रहा है वह न केवल सत्य होना चाहिए, वरन् यह परमेश्वर का यथार्थ सत्य होना चाहिए। इसलिए अब, न केवल मैं इस फल को खा सकती हूँ, वरन् यह मेरा नैतिक दायित्व है कि मैं वह करूँ जो सर्प कहता है।"

सहसा, पतन एक पतन नहीं वरन् मानव जाति के लिए एक विशाल प्रगति में परिवर्तित हो जाता है। मुझे नहीं पता कि हमारे विश्वास और व्यवहार के लिए और कैसे परीक्षण किया जा सकता है यदि हमारे पास आज्ञाकारिता और अवज्ञा के मध्य, धार्मिकता और अधर्म के मध्य, ख्रीष्ट और ख्रीष्ट विरोधी के मध्य अन्तर को समझने का कोई मार्ग नहीं है, इसके अतिरिक्त कि ये श्रेणियाँ विरोधाभासी हैं।

जब परमेश्वर कुछ कहते हैं और कोई और उसके विपरीत कुछ कहता है, तो हम अब विरोधाभास को अस्वीकार करने के लिए नैतिक रूप से उत्तरदायी हैं। परमेश्वर ने हमें सोचने और मन के ठोस सिद्धान्तों को वास्तविक जीवन की स्थितियों में लागू करने की इन श्रेणियों से सुसज्जित किया है। यह एक मसीही होने के लिए नितांत आवश्यक पहलू है।

कोई भी व्यक्ति अस्तित्व दर्शन और तर्कहीनता से इतना क्यों मोहित हो सकता है कि वह न केवल विरोधाभासी सत्यों को मसीही धर्म का अभिन्न अंग मान ले वरन् उनमें मग्न हो जाए? इसका उत्तर देने के लिए, हमें अठारहवीं शताब्दी के ज्ञानोदय काल में वापस जाना होगा। उस समय लोगों ने कहा, "यदि हम तर्क को उस महत्व के स्तर तक बढ़ाना चाहते हैं कि वह अकेले ही हमें निश्चितता प्रदान कर सके, तो हमें तर्क और केवल तर्क पर आधारित धर्म

की आवश्यकता है।" अब तर्क को एक अन्य श्रेणी के विरुद्ध रखा गया है जिसे हम *प्रकाशन* कहते हैं।

प्रयास यह था कि धर्म को बाइबल के अतिरिक्त, विशेष प्रकाशन पर किसी निर्भरता के अतिरिक्त और केवल "प्राकृतिक तर्क" कहे जाने वाले आधार पर स्थापित किया जाए। अर्थात, केवल अटकलों के आधार पर, हम वह सभी सत्य प्राप्त कर सकते हैं जिसकी हमें कभी आवश्यकता होती है। इमैनुअल कांट ने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम है *रिलीजन विदीन द लिमिटस ऑफ रीज़न अलोन (Religion within the Limits of Reason Alone)*।

यदि हम कलीसिया के पिछले चार या पाँच सौ वर्षों के इतिहास पर दृष्टि करें, तो हमें आश्चर्य होता है कि ऐसा क्या हुआ है जिसके कारण कलीसिया को मानवीय अनुभव की मुख्यधारा से वस्तुत: बाहर कर दिया गया है। इसके प्रमाण के लिए, आपको बस न्यू इंग्लैंड के छोटे गाँवों और कस्बों के मध्य होकर जाना होगा। जब आप उन छोटे नगरों से होकर जाएंगे, तो आप देखेंगे कि हर एक के भौगोलिक केन्द्र में औपनिवेशिक काल से कार्यरत एक कलीसिया भवन उपस्थित है। यह आपको बताता है कि उन दिनों कलीसिया भवन लोगों के जीवन का केन्द्र था। यह शिक्षा और धर्म का मूल स्रोत और फव्वारा था। परन्तु आज, हमने कलीसिया को भौगोलिक रूप से अपने समाज के बाहरी छोर पर त्याग दिया है। देश की विधि-व्यवस्था अभी भी आपके धर्म के स्वतन्त्र अभ्यास की रक्षा करते हैं, जब तक कि यह एक निजी और व्यक्तिगत प्रसंग बना रहे और किसी भी प्रकार से समाज के सार्वजनिक चौक में अनुचित रूप से प्रवेश न करे।

हमने जो देखा है वह बाइबल के अलौकिकवाद पर प्रकृतिवाद की विजय है, परन्तु एक निश्चित सभ्य सहिष्णुता के साथ जो पिछली पीढ़ियों और पहले के विधि-व्यवस्था की परम्परा का भाग है जो अभी भी हमें अपने घरों या अपने कलीसियायों में अपने तर्कहीन विश्वास का प्रयोग करने की अनुमति देता है,—जब तक कि हम इससे किसी और की शान्ति भंग नहीं करते। प्रकृतिवाद की यह विजय, कई अर्थों में, प्राकृतिक तर्क में एक निष्कपट विश्वास और प्रतिबद्धता से प्रेरित थी जिसे तर्कवाद नामक आन्दोलन में युक्त किया गया था। यही कारण है कि जब मैं लोगों से यह स्मरण रखने की विनती करता हूं कि मसीही धर्म तर्कसंगत है, तो मुझे कलीसिया में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जब मैं कहता हूँ कि मसीही धर्म तर्कसंगत है, तो तुरन्त जो भय उभरता है वह यह है कि लोग *तर्कसंगतता* को *तर्कवाद* से जोड़ते हैं। मसीही धर्म स्पष्ट रूप से तर्कवाद को अस्वीकार करता है यदि *तर्कवाद* से हमारा अर्थ यह है कि सत्य को मसीही रहस्योद्घाटन पर किसी भी निर्भरता के बिना मानवीय तर्क के शुद्ध प्रयासों से समझा जाता है। मसीही धर्म चाहे जो कुछ भी हो, यह एक प्रकाशित धर्म है और हम उस सत्य को स्वीकार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं जो हमें परमेश्वर के वचन से प्राप्त होता है, ऐसे सत्य जिन्हें कभी भी बिना किसी सहायता के प्राकृतिक तर्क द्वारा समझा या खोजा नहीं जा सकता है।

कलीसिया को किसी भी प्रकार के प्रकृतिवाद या तर्कवाद का विरोध करना चाहिए जो ईश्वरीय प्रकाशन के अधिकार को दबाने की चेष्टा करता है। एक बार जब हम मसीही धर्म में प्रवेश कर लेते हैं और हम दृढ़ता से परमेश्वर

के प्रकाशन के प्रति समर्पण के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध कर देते हैं और इस विषय पर समझौता करने के लिए इच्छुक नहीं होते हैं कि मसीही धर्म एक प्रकाशित धर्म है, तो हम इन आगामी प्रश्नों का सामना करते हैं: क्या परमेश्वर द्वारा हमें दिया गया प्रकाशन तर्कसंगत है, जैसा कि वह तर्कहीन से पृथक है? क्या परमेश्वर द्वारा प्रकाशित किया गया सत्य समझने योग्य है? क्या यह सुसंगत है? क्या यह आन्तरिक रूप से सुसंगत है? अथवा क्या हमारे पास एक ऐसी बाइबल है जिसमें बाइबल का एक लेखक बाइबल के दूसरे लेखक का स्पष्ट रूप से खण्डन करता है, परन्तु हम कहते हैं कि वे दोनों सत्य कह रहे हैं? यह मानते हुए कि परमेश्वर दोहरी भाषा नहीं बोलता है और पवित्र आत्मा भ्रम का स्रोत नहीं है, जब हम एक ओर याकूब ने जो कहा और दूसरी ओर पौलुस ने दूसरे सन्दर्भ में जो कहा, उससे जूझते हैं, तो क्या हम बस यह कहते हैं, "वे बस एक दूसरे का खण्डन करते हैं?" अथवा, यदि हम जानते हैं कि ये दोनों ही प्रकाशन के प्रतिनिधि हैं और ये दोनों ही ऐसे साधन हैं जिनका उपयोग परमेश्वर अपनी सत्यता को प्रकट करने के लिए करता है—और यह जानते हुए कि परमेश्वर दुष्ट नहीं है कि वह लोगों से असत्य बोलेगा—तो क्या अब हम कह सकते हैं, "ये ग्रन्थ प्रारम्भिक प्रभाव से परे हैं जिन्हें सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है?" हो सकता है कि मैं आरम्भ में अंशों के मध्य दृश्यमान स्पष्ट संघर्ष से चौंक जाऊँ, परन्तु यदि मैं उन्हें ध्यान से और गम्भीरता से देखूँ, तो मुझे आन्तरिक सामंजस्य दिखाई देने लगेगा।

पिछले दो सौ वर्षों में, महान विद्वानों ने लिखित पवित्रशास्त्र में सामंजस्य की सभी प्रकार की आन्तरिक कठिनाइयों की ओर संकेत किया है। अधिकांश भाग के लिए, उच्च आलोचनात्मक विद्वता ने बाइबल की प्रेरणा के प्रतिष्ठित

मसीही दृष्टिकोण को त्याग दिया है, यह तर्क देते हुए कि केवल पिछड़े कट्टरपंथी जिनके पास कोई शिक्षा नहीं है, वे अभी भी दिव्य प्रेरणा के इस प्राचीन सिद्धान्त को मानते हैं।

हम सभी स्वीकार करते हैं कि यदि कोई पुस्तक सैकड़ों, वास्तव में हजारों वर्षों की अवधि में, विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न समयों में विभिन्न लेखकों द्वारा, विभिन्न विषयों पर बात करते हुए लिखी गई हो, तो हम आरम्भ में ही स्पष्ट विसंगतियों के मिलने की अपेक्षा करेंगे। परन्तु आप बस हार नहीं मान लेते। आप इसे और अधिक गम्भीरता से जांचना शुरू करते हैं। एक बात जो उच्च आलोचना ने की है वह यह है कि रूढ़िवादी मसीही लोगों को अपना गृहकार्य करने और बाइबल विश्लेषण के आगामी स्तर पर जाने के लिए विवश किया है। जब मैं व्यक्तिगत रूप से विश्लेषण के इस आगामी स्तर में सम्मिलित होता हूं, तो मैं बाइबल पवित्रशास्त्र के विवरणों की आन्तरिक संगतता से अभिभूत हो जाता हूँ।

विलियम फॉक्सवेल अलब्राइट *(William Foxwell Albright)*, जो पुरातत्त्व-शास्त्र के लिए वही थे जो आइंस्टीन भौतिकी के लिए थे, ने जो आखिरी विषय लिखी थी वह न्यू टेस्टामेंट कमेंट्री की एंकर बाइबल श्रृंखला के लिए अपनी प्रस्तावना थी। वह क्रोधित थे और उन्होंने कहा कि बीसवीं सदी के विद्वानों के लिए अत्यधिक संदिग्ध दार्शनिक मान्यताओं पर भरोसा करते रहना और पुरातत्व और परीक्षण के वस्तुनिष्ठ मानकों को अनदेखा करते रहने का कोई बहाना नहीं है।

मुझे स्मरण है कि मैंने इसे पढ़ा और सोचा, "बाइबल की विद्वता में हम एकदम इसी स्थल पर हैं।" हम इस बिन्दु पर इसलिए पहुँच गए हैं, क्योंकि, आंशिक रूप से, हमने तर्कहीनता को अपनाया है। डेसकार्टेस जो दिखाने की चेष्टा कर रहे थे और जो मैं दिखाने की चेष्टा कर रहा हूँ, वह यह है कि मसीही धर्म को अपनाना तर्कवाद को अपनाने के समान नहीं है। परन्तु मसीही धर्म *तर्कसंगत* है। यह अर्थहीनता का धर्म नहीं है।

इन बातों को व्यावहारिक रीति से लागू करने के लिए, आप स्वयं से पूछ सकते हैं: "बाइबल जो सिखाती है, उसके सन्दर्भ में मैं क्या मानता हूँ? क्या मेरे व्यक्तिगत ईश्वरविज्ञान में ऐसा कोई उदाहरण है जहाँ मैं स्वयं को विरोधाभास के दोनों ध्रुवों की पुष्टि करते हुए पाता हूँ?" यदि आप इस पर हाँ कह सकते हैं, तो आपको कहना चाहिए, "यदि यह परमेश्वर का वचन है, तो कहीं न कहीं मैंने इसे समझने में भूल की है।"

आप देखिए, हमारे मस्तिष्क के लिए तर्क सोने की मूर्ति नहीं बनाता, वरन् तर्क एक पुलिस अधिकारी की रीति से कार्य करता है जो कोने पर खड़े होकर सीटी बजाता है, जिससे जब आप विराम संकेत के मध्य भागना शुरू करें, तो सीटी बज जाती है। तर्कसंगतता कहती है: "समय समाप्त! आप भ्रमित हैं। आपने भूल की है। यह अर्थहीन है।" और निराशा में बाइबल को फेंकने के अतिरिक्त, आप कहते हैं, "यदि यह समझ में नहीं आता है, तो यहाँ कुछ ऐसा है जो मुझे समझ में नहीं आ रहा है।" सुकरात ने समझा कि सीखने

का आरम्भ तब होता है जब आपको अनुभव होता है कि आप एक बाधा से टकरा गए हैं और स्पष्टता से कोसों दूर हैं। यह परमेश्वर के कहने की शैली है: "इसे और गम्भीरता से देखें। इसे और व्यापक रूप से देखें। आइए देखें कि क्या हम इसे हल कर सकते हैं।" बाइबल के कठिन विषयों पर कार्य करना काफी शिक्षाप्रद हो सकता है।

अध्याय नौ

# दो प्रकार के अस्तित्व

## *Two Kinds of Being*

रेने डेसकार्टेस को कुछ ऐसा सत्य खोजने की बहुत इच्छा थी जो निर्विवाद हो। वह परमेश्वर के अस्तित्व के प्रति तर्क करने के लिए एक तर्कसंगत आधार खोजना चाहता था। अब, डेसकार्टेस ने परमेश्वर के अस्तित्व के लिए जिस प्रकार तर्क दिया वह उनके पूर्ववर्तियों से भिन्न था। सत्य कहूँ तो, मुझे नहीं लगता कि परमेश्वर के अस्तित्व के प्रति उसका तर्क उसके पहले के समय के विचारकों और यहाँ तक कि उसके उपरान्त आने वाले मनुष्यों जितना सम्मोहक था। डेसकार्टेस ने वह तर्क विकसित किया जिसे आज हम ऑन्टोलॉजिकल तर्क अर्थात प्रत्यय-सत्ता युक्ति कहते हैं।

प्रत्यय-सत्ता *अस्तित्व* का विज्ञान अथवा अध्ययन है। परमेश्वर के अस्तित्व के प्रति प्रत्यय-सत्ता युक्ति अस्तित्व के प्रश्न से सम्बन्धित है। प्रत्यय-

सत्ता युक्ति का सबसे प्रसिद्ध संस्करण डेसकार्टेस से बहुत पूर्व में ही कैंटरबरी के एंसेलम *(Anselm of Canterbury)* द्वारा प्रस्तुत हुआ था। एंसेलम ने इस रीति से तर्क देकर अपने प्रत्यय-सत्ता युक्ति का आरम्भ किया, "परमेश्वर वह अस्तित्व है जिससे अधिक महान की कल्पना नहीं की जा सकती।" कुछ लोगों ने इसे सरल भाषा में यह कहकर अनुवाद करने की चेष्टा की है कि एंसेलम ने परमेश्वर को "सबसे उत्तम कल्पनीय अस्तित्व" के रूप में परिभाषित किया है, परन्तु यह सम्पूर्ण रूप से सटीक अनुवाद नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि हमें न केवल परमेश्वर को एक मानसिक रचना अथवा एक विचार के रूप में सोचना चाहिए, वरन् हमें परमेश्वर को विद्यमान स्वरूप में भी सोचना चाहिए। यदि मैं परमेश्वर को केवल एक काल्पनिक सम्भावना के रूप में मानता हूँ, तो मैं एंसेलम के परमेश्वर के विषय में विचार नहीं कर रहा हूँ क्योंकि एंसेलम कहते हैं, "एक उच्चतर बोधगम्य अस्तित्व विद्यमान है—अर्थात्, वह जो न केवल मन की अवधारणा में विद्यमान है, वरन् वास्तविकता में भी विद्यमान है, क्योंकि अस्तित्व में होना न होने से बृहत्तर है।"

एंसेलम का तर्क सर्वविदित है, परन्तु यह एकमात्र मार्ग नहीं है जिसके द्वारा मनुष्यों ने परमेश्वर के अस्तित्व के प्रति तर्क दिया है। एक प्रकार से जिसका पालन करना बहुत सरल है, मध्ययुगीन दार्शनिकों और ईश्वरविज्ञानियों ने तर्क दिया कि परमेश्वर वह है अथवा उसके पास वह है जिसे आवश्यक या अनिवार्य अस्तित्व कहा जाता है, जो अनावश्यक अस्तित्व अथवा आकस्मिक अस्तित्व से भिन्न है।

आवश्यक अस्तित्व और आकस्मिक अस्तित्व के मध्य दो अन्तर हैं। एक *तार्किक* अन्तर है और दूसरा *प्रत्यय-सत्ता* अन्तर है। जब हम आवश्यक अस्तित्व की बात करते हैं, तो हम एक ऐसे अस्तित्व की बात कर रहे होते हैं जिसका आस्तित्व में *न* होना अनहोना है। अपने परिपूर्ण अस्तित्व की शक्ति के कारण, वह अस्तित्व से पृथक *नहीं* हो सकती। अब, इस प्रकार के भेद का कारण परमेश्वर को सभी प्राणियों से पृथक करना है। आप अभी अस्तित्व में हैं, परन्तु आपके पास आवश्यक अस्तित्व नहीं है। बहुत सम्भव है कि आप अस्तित्व में न हों। वास्तव में, एक समय था जब आप अस्तित्व में नहीं थे। इसलिए, चूँकि एक समय था जब आप अस्तित्व में नहीं थे, इसलिए हम आपके अस्तित्व के विषय में यह मांग नहीं कर सकते कि यह प्रत्यय-सत्ता रूप से आवश्यक है, क्योंकि यदि आपको अपने अस्तित्व की शक्ति की परिपूर्ण आवश्यकता के कारण अस्तित्व में होना पड़ता, तो ऐसा कोई समय ही नहीं होता जब आप अस्तित्व में न होते।

परन्तु परमेश्वर का अस्तित्व ऐसा है कि वह शाश्वत है। उसके पास स्वयं के अन्तर्गत होने की शक्ति है। और एक स्वयंसिद्ध शाश्वत अस्तित्व होने के कारण, वह अस्तित्व में न हो, यह नहीं हो सकता; अर्थात, यदि परमेश्वर हमेशा से ही अनन्त काल से अस्तित्व में है, तो हम सुरक्षित रूप से यह मान सकते हैं कि वह स्थायी रूप से अस्तित्व में रहेगा क्योंकि वह स्वयंसिद्ध है। उसका अस्तित्व अथवा उसकी विद्यमानता उसके बाह्य किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं है। दूसरी ओर, आपका अस्तित्व वायु, जल, भोजन और कुछ रोगों की अनुपस्थिति आदि पर निर्भर है। और आपका वर्तमान अस्तित्व आपके जन्म पर निर्भर करता है, किसी समय पर आपके उत्पन्न होने पर।

परन्तु परमेश्वर किसी विशिष्ट समय में उत्पन्न नहीं हुआ था और परमेश्वर अपने अस्तित्व के लिए अपने से बाहर वायु, जल, अथवा भोजन जैसी किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं है। उसके पास स्वयं में अस्तित्व में होने की शक्ति है, अर्थात वह स्वयंसिद्ध है। "प्रत्यय-सत्ता रूप से आवश्यक अस्तित्व होने" का यही हमारा अर्थ है।

परन्तु यहाँ हम जिस विषय में अधिक चिन्तित हैं, वह है पुराने दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों द्वारा *आवश्यक अस्तित्व* होने के वाक्यांश का उपयोग किया जाने वाला दूसरा मार्ग। उन्होंने कहा कि परमेश्वर का अस्तित्व न केवल प्रत्यय-सत्तामूलक रूप से आवश्यक है, वरन् *तार्किक रूप से* भी अनिवार्य या आवश्यक है; अर्थात्, परमेश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करना तर्क की आवश्यकता है और यदि आप परमेश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं, तो आप अतार्किक या तर्कहीन हो रहे हैं। दूसरे शब्दों में, तर्क स्वयं परमेश्वर के अस्तित्व की माँग करता है और परमेश्वर के अस्तित्व को नकारना तर्कसंगतता से बाहर निकलना है।

इन प्राचीन दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों ने इस प्रकार से तर्क क्यों दिया, इसका एक कारण उन लोगों को चुनौती देना था जो इन्द्रिय बोध के आधार पर परमेश्वर के अस्तित्व के विचार के विषय में प्रश्न पूछ रहे थे। लोग कहते थे: "किसी ने भी परमेश्वर को कभी नहीं देखा है। आप उसका स्वाद नहीं ले सकते, उसे छू नहीं सकते, या उसे सूंघ नहीं सकते।" अर्थात, हमारे पास परमेश्वर के विषय में कोई इन्द्रिय बोध नहीं है, जैसा कि हम वास्तविकता के अन्य रूपों के साथ करते हैं। संशयवादी कहते थे, "चूँकि हम बाहरी संवेदी साक्ष्य के माध्यम से परमेश्वर के अस्तित्व को प्रदर्शित नहीं कर सकते हैं,

इसलिए हमें उसके अस्तित्व की पुष्टि पूर्णतया नहीं करनी चाहिए।" परन्तु दार्शनिकों ने कहा कि इन्द्रियों के अतिरिक्त, तर्क के लिए परमेश्वर के विचार की तार्किक आवश्यकता होती है।

डेसकार्टेस हमें एक आधार देने की चेष्टा कर रहे थे जिस पर हम उस तर्कसंगत दावे का निर्माण कर सकें क्योंकि यह तर्कसंगत रूप से सम्भव है कि यदि कुछ भी उपस्थित नहीं है तो परमेश्वर का भी अस्तित्व न हो। यहां तक कि यह कहने के लिए भी कि कुछ भी उपस्थित नहीं है, कुछ सीमा तक जीभ फिसलने की आवश्यकता है, क्योंकि परिभाषा के अनुसार, "कुछ भी नहीं" का अस्तित्व नहीं है। यह सर्वथा अनस्तित्व अथवा सर्वथा असत् है।

परन्तु हम सैद्धान्तिक रूप से शुद्ध शून्यता के विचार की कल्पना कर सकते हैं। हम किसी वस्तु के अस्तित्व को मान सकते हैं, जैसे कि कोई व्यक्ति या कुर्सी। हम कह सकते हैं कि न तो व्यक्ति और न ही कुर्सी आवश्यक है। मैं इस सम्भावना पर विचार कर सकता हूँ कि न तो व्यक्ति और न ही कुर्सी अस्तित्व में है क्योंकि एक समय था जब न तो व्यक्ति और न ही कुर्सी वास्तव में अस्तित्व में थी। इसलिए हम कहते हैं, "न केवल हम यह कल्पना कर सकते हैं कि व्यक्ति अस्तित्व में नहीं था या अस्तित्व में नहीं है, वरन् हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि कोई भी अस्तित्व में नहीं था।" एक समय था जब कोई भी व्यक्ति नहीं था और एक समय था जब कोई भी कुर्सियाँ नहीं थीं और एक समय था जब कोई भी महासागर नहीं था और एक समय था जब कोई भी नक्षत्र नहीं थे।

यदि भूतकाल में ऐसा समय था जब नितांत कुछ भी नहीं था, तो अब वर्तमान में क्या होगा? अब आपके पास केवल एक ही वस्तु हो सकती है, कुछ

भी नहीं, जब तक कि आप यह तर्क न दें कि इस शून्यता के मध्य किसी बिन्दु पर, स्वतः अस्तित्व में कुछ आया। यह बस शून्य से अस्तित्व में आया—कोई भौतिक कारण नहीं, कोई प्रभावी कारण नहीं, कोई पर्याप्त कारण नहीं, इसके पीछे कोई शक्ति नहीं, नितान्त कुछ भी नहीं। और फिर एकाएक कुछ घटित होता है। कुछ लोग इसे *स्वतःस्फूर्त उत्पत्ति* कहते हैं, जबकि अन्य लोग *स्वयं निर्माण* शब्द का उपयोग करते हैं।

स्वयं निर्माण की अवधारणा स्पष्ट रूप से तर्कहीन, अतार्किक और विवेकशून्य है क्योंकि यह तर्क के सबसे मौलिक नियम का उल्लंघन करती है—अर्थात्, विरोधाभास का नियम, जिसे हमने पिछले अध्याय में देखा था। किसी भी वस्तु को स्वयं का निर्माण करने के लिए, उसे एक ही समय में और एक ही सम्बन्ध में होना भी चाहिए और न होना भी चाहिए। स्वयं का निर्माण करने के लिए, उसे अस्तित्व में होने से पहले ही विद्यमान होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उसे एक ही समय में एक ही सम्बन्ध में अस्तित्व में होना और न होना चाहिए, जो कि तर्कहीन और हास्यास्पद है। तर्कसंगत दृष्टिकोण से यह विचार पूरी रीति से अर्थहीन है।

डेसकार्टेस सहित तर्कवादियों ने तर्क दिया कि यदि कोई वस्तु वर्तमान में उपस्थित है, तो अनन्तकाल से कुछ न कुछ का आस्तित्व अवश्य रहा होगा। अर्थात, कभी भी ऐसा समय नहीं हो सकता जब कुछ भी उपस्थित न हो। वर्तमान में किसी भी वस्तु के उपस्थित होने के लिए अनन्तकाल से ही कहीं न कहीं कुछ न कुछ के पास स्वयं में अस्तित्व की शक्ति अवश्य उपस्थित होनी चाहिए। अर्थात, एक आवश्यक सत्ता होनी चाहिए, एक ऐसी सत्ता जो अपनी आन्तरिक आवश्यकता के द्वारा उपस्थित हो और वह आवश्यक

सत्ता न केवल प्रत्यय-सत्तामूलक आवश्यकता के द्वारा उपस्थित हो, वरन् यह तार्किक रूप से भी आवश्यक है कि निरन्तर एक आवश्यक सत्ता विद्यमान हो।

यह तार्किक रूप से भी आवश्यक है कि यदि कोई वस्तु अभी वर्तमान में उपस्थित है, तो एक प्रत्यय-सत्तामूलक रूप से आवश्यक सत्ता विद्यमान हो और डेसकार्टेस ने यही समझा। यह उनकी कठोर सन्देह प्रक्रिया की प्रतिभा थी। एक बार जब वे किसी वस्तु के अस्तित्व को निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर देते, तो वे परमेश्वर के शाश्वत स्व-अस्तित्व के निष्कर्ष पर पहुँच सकते थे। डेसकार्टेस ने अपने तर्क को इस प्रकार प्रारम्भ किया कि उनका अपना अस्तित्व निर्विवाद है क्योंकि इस पर विवाद करना केवल इसकी पुष्टि करना है। यही उनके सूत्र "चूँकि मैं सोचता हूँ; इसलिए मैं हूँ" का महत्व है; उस आधार को नकारने के लिए, किसी को उस पर सन्देह करना होगा और उस पर सन्देह करने के लिए सोचने की आवश्यकता होती है और इसलिए उस पर सन्देह करना उसी प्रस्ताव की पुष्टि करना है जिस पर सन्देह किया जा रहा है। इसलिए, डेसकार्टेस बस इतना कहते हैं कि केवल तर्कसंगत आवश्यकता के कारण किसी को भी परमेश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करनी चाहिए।

दार्शनिकों ने कहा कि यदि आप तर्कसंगत होने जा रहे हैं तो किसी भी प्रकार के स्वयं-अस्तित्व वाले, शाश्वत अस्तित्व के अस्तित्व की पुष्टि आवश्यक है। इसे नकारने के लिए आपको तर्कहीन होना होगा। अथवा इसे दूसरी रीति से कहें तो, न केवल बाइबल यह घोषणा करती है कि परमेश्वर का आस्तित्व है, वरन् तर्क स्वयं स्वयं-अस्तित्व वाले शाश्वत अस्तित्व के अभिकथन की मांग करता है।

हम जानते हैं कि स्वयं-अस्तित्व वाले, शाश्वत अस्तित्व के अस्तित्व की पुष्टि करने और अब्राहम, इसहाक और याकूब के परमेश्वर की पुष्टि करने में अन्तर है। परन्तु ध्यान रखें कि बाइबल के मसीही धर्म के विरुद्ध आलोचनात्मक आक्रमण और सन्देह का केन्द्र बिन्दु परमेश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार करना है। परन्तु शास्त्रीय दर्शन में, मसीही धर्म या यहूदी धर्म या इस्लाम या संसार के किसी भी धर्म को नकारने वाले संशयवादियों को यह स्वीकार करना पड़ा कि किसी भी वस्तु के अस्तित्व के लिए किसी भी प्रकार का सर्वोत्त्कृष्ट स्वयं-अस्तित्व वाला सृष्टिकर्ता उपस्थित होना चाहिए।

सभी आस्तिकवाद के लिए उस मूल आधार पर हमारे समय में प्रबलता से आक्रमण किया गया है। यदि आप किसी अनिवार्य या आवश्यक अस्तित्व के विचार को ही रद्द कर सकते हैं, तो आप बहुत ही सरलता से सृष्टि को भी रद्द कर सकते हैं और यदि आप सृष्टि को ही रद्द कर देते हैं, तो आपको मसीही धर्म के विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इस बहस में यही बात दांव पर लगी है।

अध्याय दस

# अस्तित्व और परात्परता

## *Being and Transcendence*

पिछले अध्याय में, हमने परमेश्वर के अस्तित्व के लिए प्रत्यय-सत्तामूलक तर्क के कुछ विभिन्न संस्करणों को देखा—अर्थात, "अस्तित्व" की ओर से एक तर्क। अपने सरलतम निरूपण में, यह तर्क प्रस्तावित करता है कि यदि कुछ वर्तमान काल में उपस्थित है, तो कुछ का आवश्यक अस्तित्व होना चाहिए। अर्थात्, किसी वस्तु में अपने अन्तर्गत निहित होने की शक्ति होनी चाहिए, अथवा कुछ भी सम्भवतः विद्यमान नहीं हो सकता है, परन्तु चूँकि कुछ विद्यमान है, तो कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार से उसके अन्तर्गत विद्यमान होने की शक्ति होनी चाहिए।

जिन लोगों ने परमेश्वर के अस्तित्व को नकारा है, उन्होंने एक आवश्यक,

शाश्वत, स्वयं-अस्तित्व वाले अस्तित्व के विचार को भी नकारा है। उन्होंने स्व-निर्माण के सिद्धान्त के आधार पर उस विचार के विरुद्ध तर्क दिया है।

कुछ नास्तिक इस बात से सहमत थे कि यह तर्क का एक अकाट्य सिद्ध प्रमाण है कि यदि वर्तमान में कुछ अस्तित्व में है, तो कुछ अनन्त काल से ही उपस्थित रहा है। किसी वस्तु का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। परन्तु उन्होंने प्रश्न किया, आपको स्वयं-अस्तित्व वाले, आवश्यक अस्तित्व के विचार से पहचाने जाने के लिए एक सर्वोत्कर्ष ईश्वर को क्यों बनाना पड़ा? यह स्वयं ब्रह्माण्ड क्यों नहीं हो सकता?

पहला उत्तर यह है कि ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से ऐसे तत्व उपस्थित हैं जो उस तथ्य को प्रकट करते हैं जिसे हम आकस्मिकता कहते हैं—अर्थात्, ऐसी वस्तुएँ जो उत्पादन और क्षय की प्रक्रिया से होकर जाती हैं, जिनका अस्तित्व निर्भर और व्युत्पन्न है और स्वतन्त्र नहीं है। उदाहरण के लिए, मैं ब्रह्माण्ड का एक भाग हूँ, परन्तु ये दार्शनिक यह तर्क नहीं देंगे कि मैं अपनी वर्तमान व्यक्तिगत स्थिति में शाश्वत और स्वयं-अस्तित्व हूँ। यह समझने के लिए आर.सी. स्प्रोल की बहुत अधिक जाँच की आवश्यकता नहीं है कि उनका स्वयं-अस्तित्व नहीं है और उनके पास अपने अन्तर्गत निहित होने की शक्ति नहीं है।

जो लोग किसी प्रकार के शाश्वत ब्रह्माण्ड के लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं, वे स्वीकार करेंगे कि ब्रह्माण्ड के कुछ भाग स्वयं-अस्तित्व और शाश्वत नहीं हैं। परन्तु प्रायः वे तर्क देते हैं कि ब्रह्माण्ड में एक कम्पायमान अन्तर्भाग विद्यमान

है, जिसमें से सबकुछ उत्पन्न होता है। वे तर्क देते हैं कि केवल यह कम्पायमान अन्तर्भाग ही है जिसका अस्तित्व आवश्यक है। फिर से, ब्रह्माण्ड में सब कुछ स्वयं-अस्तित्व और शाश्वत नहीं है। परन्तु वे कहते हैं कि महाविस्फोट *(Big-Bang)* से पहले, सभी पदार्थों और ऊर्जा को एक विलक्षण बिन्दु में संपीड़ित करने वाली कोई स्पंदित ऊर्जा या शुद्ध विलक्षणता का होना अवश्य है और उसमें से सभी वास्तविकता प्रवाहित होती है। और यह कम्पायमान अन्तर्भाग जिसमें स्वयं के अन्तर्गत होने की शक्ति विद्यमान है, उसे कहीं "परे" स्थित होने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ हम परमेश्वर की परात्परता की बात करते हैं। अर्थात्, जब हम परमेश्वर के विषय में बात करते हैं, तो हम परमेश्वर और संसार के मध्य अन्तर करते हैं और हम कहते हैं कि परमेश्वर अपने ब्रह्माण्ड से परे है। परमेश्वर ब्रह्माण्ड नहीं है वरन् परमेश्वर ने ब्रह्माण्ड का निर्माण किया। यह ऐतिहासिक मसीही धर्म की पुष्टि है। परन्तु यह सिद्धान्त कहता है: हमें ब्रह्माण्ड के लिए ऐसा कारण क्यों चाहिए जो ब्रह्माण्ड से बाह्य हो? हम इसे स्वयं ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ही क्यों नहीं खोज सकते?

परन्तु यहाँ भाषा में एक निश्चित संदिग्धता का आभास है। संदिग्धता तब प्रकट होती है जब किसी तर्क में उपयोग किए गए शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है। ये दार्शनिक कहते हैं कि एक स्वयं-अस्तित्व वाला, शाश्वत आवश्यक अस्तित्व है जो सब कुछ का कारण बनता है, परन्तु यह परमेश्वर नहीं है क्योंकि यह परात्परता नहीं है वरन् ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत निहित है।

हमें यह समझना चाहिए कि दर्शनशास्त्र या ईश्वरविज्ञान में *परात्परता*

शब्द भूगोल का वर्णन करने वाला शब्द नहीं है। जब हम कहते हैं कि परमेश्वर ब्रह्माण्ड से सर्वोच्च और परे है, तो हम यह नहीं कह रहे हैं कि कई अरब या खरब मील दूर आकाश में एक रेखा है जो ब्रह्माण्ड की बाहरी सीमा को परिभाषित करती है और फिर अन्तरिक्ष में और समय में उस रेखा के ऊपर सर्वशक्तिमान का निवास स्थान है। हम *परात्परता* शब्द का उपयोग परमेश्वर के "कहाँ" या परमेश्वर के निवास के विषय में बात करने के लिए नहीं कर रहे हैं। वरन्, जब परमेश्वर पर *परात्परता* शब्द प्रयुक्त होता है, तो इसका अर्थ है कि परमेश्वर का अस्तित्व सभी निर्मित अस्तित्व से सर्वोच्च और परे है। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर अस्तित्व का एक उच्चतर क्रम है और उसका अस्तित्व उन प्राणियों से सर्वोच्च और परे है जो उस प्रतिदिन के संसार में पाए जाते हैं जिसमें हम वास करते हैं।

तथापि, नास्तिक तर्क जो कहता है कि हम किसी परात्परता सत्ता के अपील करने के अतिरिक्त भी उस वस्तु के लिए स्पष्टीकरण पा सकते हैं जो अभी आस्तित्व में उपस्थित है, वास्तव में इस कम्पायमान अन्तर्भाग को ब्रह्माण्ड में उपस्थित अन्य सब वस्तुओं से पृथक करके एक परात्परता सत्ता की अपील करता है। इस रहस्यमय अन्तर्भाग और अन्य सभी वस्तुओं में क्या अन्तर है?

वास्तव में, यह रहस्यमय अन्तर्भाग ही निर्माता है और अन्य सब कुछ सृष्टि है। केवल इस अन्तर्भाग में ही शाश्वत आत्म-अस्तित्व उपस्थित है। इस रहस्यमय अन्तर्भाग में आवश्यक अस्तित्व उपस्थित है। ब्रह्माण्ड में अन्य सब वस्तुओं का अस्तित्व आवश्यक नहीं है। अस्तित्व के सन्दर्भ में, यह मूल तत्व

जो समस्त वस्तुओं व विषयों को चलायमान रखता है, अन्य समस्त वस्तुओं से परे है। ये दार्शनिक और वैज्ञानिक हमें परमेश्वर के चरित्र के शास्त्रीय विवरण का एक सुन्दर वर्णन देते हैं, यद्यपि वे कह रहे हैं कि परमेश्वर इस ब्रह्माण्ड का मात्र एक भाग है।

इस के अतिरिक्त, यहाँ एक और गूढ़ शब्द का खेल चल रहा है। कभी-कभी, जब हम *ब्रह्माण्ड* शब्द का उपयोग करते हैं, तो हम इसका उपयोग सृष्टि के सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए करते हैं। अन्य समयों में, *ब्रह्माण्ड* शब्द का अर्थ है वह सब कुछ जो आस्तित्व में है। अब, यदि मैं *ब्रह्माण्ड* का उपयोग हर उस वस्तु का वर्णन करने के लिए करता हूँ जो आस्तित्व में है, तो क्या मसीही लोग यह पुष्टि करेंगे कि परमेश्वर ब्रह्माण्ड में है? हाँ, क्योंकि यदि *ब्रह्माण्ड* शब्द का अर्थ है वह सब कुछ जो आस्तित्व में है और यदि परमेश्वर का आस्तित्व है, तो निश्चित रूप से परमेश्वर को उस ढाँचे के अन्तगर्त उपस्थित होना चाहिए जिसे हम ब्रह्माण्ड कह रहे हैं। परन्तु यदि हम *ब्रह्माण्ड* शब्द का उपयोग पूरे सृजित क्षेत्र को सन्दर्भित करने के लिए करते हैं, तो क्या हम कहेंगे कि परमेश्वर केवल उसी क्षेत्र तक सीमित है? नहीं। हम कहेंगे कि उसका अस्तित्व वहाँ समाहित नहीं हो सकता, निश्चित रूप से वह वहाँ उपस्थित है, परन्तु वह वहाँ से परे भी है। इसलिए फिर से, एक प्रकार की दुविधा का जन्म हो रहा है। परन्तु हमारा मुख्य बिन्दु यह है कि तर्क कुछ ऐसा साक्ष्य माँगता है जो स्वयं-अस्तित्व वाला और शाश्वत हो और कोई भी सिद्धान्त उससे दूर नहीं जा सकता।

मसीही लोगों को बाइबल आधारित मसीही धर्म के विरुद्ध आरम्भ किए गए इस बड़े स्तर के आक्रमण के सम्मुख पीछे नहीं हटना चाहिए जो हमें

बारम्बार बताता है कि यदि आप वैज्ञानिक होने जा रहे हैं अथवा यदि आप तर्कसंगत होने जा रहे हैं अथवा यदि आप तार्किक होने जा रहे हैं, तो आपको अपने धार्मिक विश्वास को त्यागना होगा। हमें उन लोगों से पीछे हटने की आवश्यकता नहीं है जो विश्वास को तर्कहीनता या बेतुकेपन में छलांग लगाने के समकक्ष मानते हैं। मसीही दर्शन दो हज़ार वर्षों से कह रहा है कि कारण, तर्कसंगतता और तर्क मसीही धर्म के सत्य घोषणाओं के सहयोगी हैं, उनके शत्रु नहीं। परन्तु हमारी संस्कृति में, संशयवादी मसीही लोगों से ऊंचे स्वर से कह रहे हैं: “आप केवल विश्वास के द्वारा ही परमेश्वर पर निष्ठा करते हैं। हम इसलिए परमेश्वर पर विश्वास नहीं करते क्योंकि हम तर्कसंगत हैं, हम तार्किक हैं और हम वैज्ञानिक हैं। दूसरी ओर, आपने एक तर्कहीन, अतार्किक, भावनात्मक मिथक के आधार पर अपने दृष्टिकोण या विश्व-दर्शन का निर्माण किया है।”

हमें दीर्घकाल से यही बताया गया है कि अब हमारे पास मसीही लोगों की ऐसी पीढ़ियाँ हैं जो कहती हैं: “हाँ, यह सत्य है। परन्तु हमारे पास कुछ ऐसा है जो तर्क से भी श्रेष्ठ है। हमारे पास परमेश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करने के लिए हमारी व्यक्तिपरक इच्छाओं अथवा हमारे रहस्यमय अनुभवों के अतिरिक्त कोई और आधार नहीं है। हमारे पास परमेश्वर की वास्तविकता के सत्य दावों की पुष्टि करने के लिए कोई वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है और हम यह सब एक ऐसे विश्व दर्शन के सम्मुख समर्पित कर देते हैं, जिसकी जाँच करने पर प्रकट होता है कि यह सर्वथा अतार्किकता और बेतुकेपन पर आधारित है।”

परन्तु मसीही लोगों को अपनी बुद्धि को कलीसिया की पार्किंग में नहीं

छोड़ना चाहिए या तर्कसंगतता और तार्किक सुसंगतता को एक तर्कहीन प्रणाली के सम्मुख समर्पित नहीं करना चाहिए जो इस बात की पुष्टि करती है कि कुछ नहीं से कुछ का निर्माण होता है। यदि हम पौराणिक मिथक कथाओं को देखना चाहते हैं, तो आइए आत्म-निर्माण के मिथक को देखें। वास्तव में, यह प्रणाली अपनी अतार्किकता में इतनी स्पष्ट है कि हमें आश्चर्य होता है कि बुद्धिमान लोग इन पुष्टियों को क्यों दोहराते रहते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई भौतिक विज्ञानी क्रमिक स्वतःस्फूर्त उत्पत्ति के विषय में बात करता है, तो लोग क्यों नहीं हँसते?

इसके दो मूल कारण हैं। एक यह कि लोगों ने इसके विषय में कभी नहीं सोचा। उन्होंने कभी नहीं पूछा, "हम अपने विचार में इस स्थल पर कैसे पहुँचे जहाँ हम आत्म-निर्माण और इस प्रकार की अन्य निरर्थक विषयों को महत्व देने के इच्छुक हैं?" दूसरे शब्दों में, हमने उन आधारों की जाँच नहीं की है जो हमें इस निरर्थक विषयों की ओर ले गए हैं। डेसकार्टेस ने यही किया। उन्होंने सभी तर्कसंगतता के मुख्य शुरुआती बिन्दुओं पर वापस जाने की चेष्टा की।

दूसरा कारण यह है कि इसमें बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक आकर्षण निहित है। यदि मनुष्य परमेश्वर के अतिरिक्त ब्रह्माण्ड की पुष्टि कर सकता है, तो वह एक ऐसे जीवन की पुष्टि कर सकता है जो अब नैतिक रूप से उस परमेश्वर के प्रति उत्तरदायी नहीं है। और एक व्यक्ति जिसके पास पश्चातापहीन अपराध है, वह अपनी शक्ति में ऐसा सब कुछ करेगा, अपनी कल्पना में हर छल का उपयोग करेगा और अपने अपराध को तर्कसंगत बनाने के लिए बौद्धिक रूप

से उसके पास उपलब्ध हर शस्त्र का उपयोग करेगा। और उसका अन्तिम प्रयास न्यायाधीश से छुटकारा पाना है। यदि परमेश्वर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के लिए केवल बिजली की आपूर्ति भर है, तो वह लोगों को डराता नहीं है। हम इसे आज लोगों के बात करने की रीति में देखते हैं। लोग कहेंगे: "मैं मसीही धर्म, यहूदी धर्म या इस्लाम के ईश्वर में विश्वास नहीं करता। मैं व्यक्तिगत ईश्वर में विश्वास नहीं करता। परन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि किसी प्रकार की कम्पायमान शक्ति का अस्तित्व होना चाहिए।" परन्तु वह ब्रह्माण्डीय शक्ति कोई डर प्रस्तुत नहीं करती है यदि वह अवैयक्तिक बनी रहे, क्योंकि यदि वह अवैयक्तिक है, तो मैं व्यक्तिगत रूप से उसके प्रति उत्तरदायी नहीं हूँ। मुझे अपने जीवन, अपने पापों, अपने पुण्यों का वायु के झोंके या भूकम्प के सम्मुख हिसाब देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु एक व्यक्तिगत, स्वयं-अस्तित्व वाला, शाश्वत परमेश्वर जिसने मेरा निर्माण किया और जिसने मुझे उसके प्रति जवाबदेह बनाया, वह मेरी आत्मा के लिए उपस्थित सबसे बड़ा संकट है।

अध्याय ग्यारह

# तार्किक निष्कर्ष

## *Logical Inference*

तर्क का कभी आविष्कार नहीं हुआ, क्योंकि तर्क अनन्तकाल से ही विद्यमान है। तर्क स्वयं परमेश्वर का एक स्वरूप है। और चूँकि परमेश्वर शाश्वत है और उसके विचार अनन्तकाल से ही स्पष्ट, सुसंगत और तर्कयुक्त है, इसलिए हम कह सकते हैं कि जब तक परमेश्वर विद्यमान है, तब तक तर्क भी उपस्थित है।

वस्तुतः, एक मसीही दार्शनिक ने यूहन्ना के सुसमाचार की प्रस्तावना के विषय में एक बहुत ही दृढ़ वक्तव्य दिया, जो कुछ ऐसा है, "आदि में वचन था और वचन परमेश्‍वर के साथ था और वचन परमेश्‍वर था" (यूहन्ना 1:1)। ग्रीक शब्द जिसका हम "वचन" के रूप में अनुवाद करते हैं, वह *लोगोस* है और *लोगोस* वह शब्द है जिससे अंग्रेजी शब्द *तर्क* उत्पन्न हुआ है। इसलिए इस

मसीही दार्शनिक ने कहा कि यदि यूहन्ना 1 को ऐसे पढ़ा जाए तो यह इसका एक वैध अनुवाद होगा—"आदि में तर्क था और तर्क परमेश्वर के साथ था और तर्क परमेश्वर था। . . . और तर्क, जो अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण था, देहधारी हुआ और हमारे मध्य में निवास किया" (देखें पद 14)। अब, मसीही दार्शनिक का अर्थ यह नहीं था कि तर्क का विज्ञान या विषय स्वयं परमेश्वर के समान है। वरन्, उनका मानना था कि त्रिएक परमेश्वर का दूसरा व्यक्ति वह है जिसमें सभी वस्तुएँ अपनी सुसंगतता और एकता और स्थिरता पाती हैं। वह परमेश्वर के आन्तरिक तर्क की बाहरी अभिव्यक्ति है।

विचार यह है कि तर्क विचार, अभिव्यक्ति और शब्दों से सम्बन्धित है। *जीवविज्ञान*, *ईश्वरविज्ञान* और *समाजविज्ञान* जैसे शब्द—जिनमें प्रत्यय—*विज्ञान* है—यूनानी या ग्रीक शब्द *लोगोस*, अथवा *वचन* या *शब्द* या *तर्क* से उधार लिए गए हैं। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं कि *जीवविज्ञान जीव* अथवा "*जीवन*" से सम्बन्धित एक शब्द है, अथवा हम यह कह सकते हैं कि जीवविज्ञान का अध्ययन जीवित वस्तुओं के आन्तरिक तर्क को समझने का एक प्रयास है, ठीक उसी प्रकार जैसे *मनोविज्ञान* मानसिक वस्तुओं के आन्तरिक तर्क की खोज करता है।

जब हम तर्क के विषय को देखते हैं, तो हम पहचानते हैं कि यह एक औपचारिक विज्ञान है, बहुत कुछ गणित जैसा और यह प्रस्तावों और आधारों के सम्बन्ध के एक प्रकार के नियामक अथवा नियंत्रक के रूप में कार्य करता

है। तर्क में स्वयं कोई विषय-वस्तु निहित नहीं होती। शुद्ध तर्क कुछ भी प्रकट नहीं करता। यह हमें कोई जानकारी प्रदान नहीं करता। तर्क केवल प्रस्तावों या आधारों के मध्य औपचारिक, तर्कसंगत सम्बन्ध को परिभाषित करता है। यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि हम सोचते हैं कि हम केवल तर्क के द्वारा परमेश्वर की बातें सीख सकते हैं, तो हम दुखी होकर निराश होंगे, क्योंकि तर्क में कोई विषय-वस्तु निहित नहीं होती।

परन्तु यदि तर्क में कोई विषय-वस्तु निहित नहीं होती और यह केवल नियंत्रक के रूप में कार्य करता है अथवा प्रस्तावों के औपचारिक सम्बन्धों का वर्णन करता है, तो मसीही लोगों के लिए इसका क्या सम्भावित लाभ है? जैसा कि हमने अध्याय 8 में कहा, तर्क एक प्रकार के पुलिस अधिकारी के रूप में कार्य करता है जो चौकी पर पहरा देता है। यदि मैं परमेश्वर के लिखित वचन से अनुचित निष्कर्ष या निगमन प्राप्त कर रहा हूँ, तो पुलिस अधिकारी अपनी सीटी बजाता है और कहता है: "जहाँ हो वहीं रुक जाओ! न्याय के हेतु रुक जाओ!" उसकी सीटी से मुझे ज्ञात होता है कि मैंने अपने विचार में भूल की है।

तर्क से मसीही लोगों को बहुत लाभ होता है, विशेषकर तब जब हम पवित्र शास्त्र की सुसंगतता को समझने की चेष्टा करते हुए खुद को भ्रमित पाते हैं। मान लीजिए कि मैं बाइबल के किसी अंश की इस रीति से व्याख्या करता हूँ कि यह बाइबल के किसी दूसरे भाग से एकदम भिन्न है अथवा वास्तव में उसका खण्डन करता है। यदि हम मान लें कि बाइबल परमेश्वर का वचन है

और परमेश्वर सुसंगत और तर्कसंगत और एकीकृत है और दोहरी भाषा नहीं बोलता है, तो जैसे ही मैं शास्त्र के उन दो अंशों को लेता हूँ और उनकी व्याख्या इस रीति से करता हूँ, सीटी बजती है और मुझे बताती है कि मैंने पवित्रशास्त्र के कम से कम एक और सम्भवतः दोनों भागों को समझने में भूल की है। क्योंकि यदि मैं परमेश्वर की बातों को विरोधाभासी रीति से समझ रहा हूँ, तो मैं वास्तव में उन्हें नहीं समझ रहा हूँ, है न? यदि वे विरोधाभासी हैं, तो वे समझ से बाहर हो जाते हैं। इसलिए, पवित्रशास्त्र से अनुचित निष्कर्ष निकालने से बचने के लिए एक सुरक्षात्मक उपकरण के रूप में, तर्क एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य करता है।

तर्क के कुछ प्राथमिक सिद्धान्तों पर दृष्टि डालना लाभदायक होगा जिससे हम देख सकें कि इस प्रकार की वस्तु कैसे कार्य करती है। सबसे पहले, आइए तत्काल अनुमान के नियमों पर विचार करें। अनुमान प्रस्तावों अथवा आधारों से प्राप्त किए गए उपसंहार अथवा निगमन हैं। और निष्कर्ष वह है जो *बिना किसी हस्तक्षेप के* अनिवार्य रूप से, स्वचालित रूप से प्रवाहित होता है; यह वह ज्ञान है जो हम किसी विशेष आधार से तुरन्त प्राप्त करते हैं।

उदाहरण के लिए, हम सीखते हैं कि सत्य तालिकाओं या तत्काल निष्कर्ष के नियमों में, विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव निहित हैं—एक सार्वभौमिक सकारात्मक प्रस्ताव। सार्वभौमिक सकारात्मक वह होता है जो किसी दिए गए वर्ग के प्रत्येक सदस्य के विषय में कुछ संकेत करता है। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध युक्तिवाक्य “सभी मनुष्य नश्वर हैं” एक सार्वभौमिक सकारात्मक

प्रस्ताव है। हम मानवता के वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के विषय में कुछ पुष्टि कर रहे हैं। अब यदि हम कहते हैं, “कोई भी मनुष्य कंगारू नहीं है,” तो हम सार्वभौमिक रीति से कुछ नकारात्मक कह रहे होंगे।

सार्वभौमिक और विशेष के मध्य का अन्तर *समस्त* अथवा *नहीं* जैसे शब्दों का उपयोग करने के मध्य का अन्तर है, जो सार्वभौमिक शब्द हैं और कुल से कम *कुछ* या कोई निर्दिष्ट संख्या, जो विशेष शब्द हैं। यदि यह सत्य है कि “सभी मनुष्य नश्वर हैं,” और मैंने कहा, “कुछ मनुष्य नश्वर नहीं हैं,” तो क्या यह एक वैध निष्कर्ष होगा? यदि सभी मनुष्य नश्वर हैं, तो क्या यह एक ही समय में सत्य हो सकता है कि कुछ मनुष्य नश्वर नहीं हैं? हम तुरन्त ही जान जाएंगे कि ये दोनों कथन एक साथ नहीं रह सकते। यदि कक्षा में सभी लोग उस कार्यकलाप में भाग लेते हैं जो उनके लिए संकेत दिया गया है, तो हम उस कक्षा में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं पा सकते हैं जिसके लिए वह संकेत न दिया गया हो। यदि सभी मनुष्य नश्वर हैं, तो यह सत्य नहीं हो सकता कि कुछ मनुष्य नश्वर नहीं हैं। इसलिए इस विषय में, विशेष नकारात्मक सार्वभौमिक सकारात्मक के साथ सह-अस्तित्व में नहीं रह सकता है और यह तत्काल निष्कर्ष के नियमों में से एक है।

चलिए वस्तुओं को थोड़ा और कठिन बनाते हैं। मान लीजिए मैंने कहा, “सभी मनुष्य नश्वर हैं,” और फिर मैंने कहा, “कुछ मनुष्य नश्वर हैं।” तो क्या यह वैध निष्कर्ष होगा या अवैध निष्कर्ष? यदि यह सत्य है कि सभी मनुष्य नश्वर हैं, तो क्या यह सत्य होगा कि कुछ मनुष्य नश्वर हैं? प्रत्यक्ष रूप से, कुछ

लोग नश्वर होंगे क्योंकि *कुछ* लोग पूरे समूह का भाग होंगे। परन्तु यदि मैं यह कह रहा था कि कुछ लोग नश्वर नहीं हैं और उस निष्कर्ष पर पहुँचा, तो मैं तत्काल निष्कर्ष के नियमों का उल्लंघन कर रहा था। परन्तु यदि यह पूरे वर्ग के लिए सत्य है, तो यह निश्चित रूप से वर्ग के भाग के लिए भी सत्य है। इसलिए यदि "सभी मनुष्य नश्वर हैं," तो निश्चित रूप से "कुछ लोग नश्वर हैं" एक वैध निष्कर्ष होगा।

अब यदि हम कहें, "सभी मनुष्य नश्वर हैं" और "कोई भी मनुष्य नश्वर नहीं है," तो यह अनुचित होगा। क्या होगा यदि हम कहें, "कुछ लोग नश्वर हैं" और "कुछ लोग नश्वर नहीं हैं?" क्या इसमें कोई विरोधाभास होगा? नहीं। यदि प्रस्ताव केवल यह है कि "कुछ लोग नश्वर हैं," तो संगत प्रस्ताव "कुछ नहीं हैं" तुरन्त उल्लंघन का संकेत नहीं देगा।

सरलीकरण के लिए, मान लें, "कुछ पुरुष गंजे होते हैं।" क्या यह सम्भव है कि ऐसे पुरुष भी हों जो गंजे हों? हाँ और यदि मैं कहता हूँ कि *कुछ* पुरुष गंजे होते हैं, तो क्या यह इस आधार से अनिवार्य रूप से निकलता है कि *सभी* पुरुष गंजे होते हैं? नहीं। यह भी सत्य हो सकता है कि "कुछ पुरुष गंजे *नहीं* होते।" जब आप विशेष बातों से निपट रहे होते हैं तो यह सदा उतना स्पष्ट नहीं होता जितना कि जब आप नकारात्मक और सकारात्मक के सार्वभौमिकों के मध्य तुलना कर रहे होते हैं।

तर्क के दूसरे सिद्धान्त में *सम्भावित निष्कर्ष* और *आवश्यक निष्कर्ष* के

मध्य का अन्तर निहित है। यदि मैं कहता हूँ, "कुछ लोग नश्वर हैं," तो यह एक सम्भावित निष्कर्ष है कि कुछ लोग नश्वर नहीं हैं, परन्तु क्या यह एक आवश्यक निष्कर्ष है? कदापि नहीं। हम इसे शास्त्रों पर लागू कर सकते हैं और देख सकते हैं कि हमें बाइबल के अनुवाद में कैसे त्रुटियाँ मिलती हैं। यूहन्ना का सुसमाचार हमें बताता है कि शिष्य ऊपरी कक्ष में उपस्थित थे और "यहूदियों के डर के मारे बन्द थे।" परन्तु पुन: पाठ कहता है, "यीशु आकर उनके मध्य खड़ा हो गया" (यूहन्ना 20:19)। अब, क्या उस पाठ से यह सम्भावित निष्कर्ष ले सकते है कि यीशु, अपने पुनर्जीवित अवस्था में, अपने महिमामय शरीर में, बन्द द्वारों से होकर चलने में सक्षम थे? यह पाठ से लिया गया एक सामान्य निष्कर्ष है। क्या पाठ *स्पष्ट रूप से* कहता है कि यीशु उस द्वार से होकर चले जबकि वह अभी भी बन्द था? नहीं। यह पाठ से लिया गया एक सम्भावित निष्कर्ष है, परन्तु पाठ इसे एक आवश्यक निष्कर्ष नहीं बनाता है क्योंकि एक और सम्भावना है। सम्भवतः शिष्य यहूदियों के भय से ऊपरी कक्ष में द्वार बन्द करके एक साथ इकट्ठे हुए थे और यीशु ने शांतिपूर्वक द्वार खोला, अन्दर चले गए और उनके सामने प्रकट हुए। अब, पाठ यह नहीं कहता है कि उसने द्वार खोला, ठीक वैसे ही जैसे यह पाठ यह नहीं कहता है कि वह बन्द द्वार से होकर चला गया। यह इस विषय में कुछ नहीं कहता है कि यीशु कक्ष में कैसे आया। यह बस इतना कहता है कि द्वार बन्द था और यीशु प्रकट हुए।

कुछ लोग इस पर प्रश्न उठाते हैं कि सुसमाचार के लेखक ने यह विवरण क्यों दिया कि द्वार बन्द था, यदि यह विचार व्यक्त करने के लिए नहीं कि हमारे प्रभु के पास इस ठोस वस्तु से होकर जाने की क्षमता थी। परन्तु इसका उत्तर हमें पहले से ही पाठ में ही मिल गया है। हमें बताया गया है कि द्वार यहूदियों के भय से बन्द था। द्वार के बन्द होने का विवरण हमें यीशु के पुनर्जीवित शरीर के विषय में नहीं वरन् उस समय शिष्यों की स्थिति के विषय में कुछ बताने के लिए दिया गया है।

अथवा हो सकता है यूहन्ना का उद्देश्य हमें यह बताना था कि द्वार इसलिए बन्द था क्योंकि शिष्य यहूदियों से डरते थे और यह सुनिश्चित करना था कि हम यीशु के उस बन्द द्वार से होकर आने की आश्चर्यजनक बात को समझ सकें, जबकि वह अभी भी बन्द था। परन्तु हम नहीं जानते, है न? यूहन्ना ने हमें नहीं बताया। इसलिए हम कह सकते हैं कि यह एक सम्भावित निष्कर्ष है कि यीशु के अपने पुनर्जीवित शरीर में ठोस वस्तुओं से होकर जाने की शक्ति थी, परन्तु यह उस पाठ से लिया गया एक आवश्यक निष्कर्ष नहीं है।

पुराने और नए नियम में कई ऐसे भाग हैं जिनमें कुछ बातें निहित हैं अथवा सम्भावनाओं के रूप में यथोचित रूप से उनका निष्कर्ष निकाला जा सकता है। परन्तु हमें ऐसे निहितार्थों से निष्कर्ष निकालने के विषय में अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। इसलिए इन निष्कर्षों के नियमों और तार्किक निष्कर्षों के नियमों के विषय में शिक्षित होना महत्वपूर्ण है,

जिससे हम परमेश्वर के वचन से अनुचित निष्कर्ष निकालने की भूल न करें। यदि शत्रु हमें परमेश्वर के वचन से अवैध निष्कर्ष निकालने के लिए विवश कर सकता है, तो हम उसके हाथों में मिट्टी के समान बन जाते हैं।

अध्याय बारह

# मन और पवित्रशास्त्र

## *The Mind and the Scriptures*

मसीही व्यक्ति और मसीही मन के हमारे संक्षिप्त अध्ययन में, हमने दिखाया है कि मसीही धर्म तर्कहीन, बेतुका या अतार्किक नहीं है। (परन्तु, हम परमेश्वर के वचन को इच्छानुसार तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकते हैं और इसे अपने अनुत्तरदायी व्यवहार से अतार्किक और तर्कहीन बना सकते हैं।) निस्सन्देह, हम यह नहीं कह रहे हैं कि तर्कवाद और मसीही धर्म एक ही वस्तु हैं। परन्तु मसीही धर्म तर्कसंगत है और परमेश्वर का वचन हमें इसलिए दिया गया है जिससे हम इसे समझ सकें। *समझना* एक महत्वपूर्ण शब्द है। हम प्रेरितों के आदेश को स्मरण करते हैं "भाइयो, अपनी समझ में बच्चे न बनो। वैसे बुराई में तो शिशु बने रहो, परन्तु *समझ* में सयाने हो जाओ" (1 कुरिन्थियों 14:20)।

मैं प्रायः सुनता हूँ कि लोग बच्चों जैसा विश्वास रखना चाहते हैं और वे इसे एक ढाल के रूप में उपयोग करते हैं जिससे वे अपने मन को परमेश्वर द्वारा हमें दिए गए वचन की सबसे सटीक सम्भव समझ पर प्रयुक्त करने के कठिन कार्य से खुद को बचा सकें। परन्तु अपनी समझ में परिपक्व और वयस्क होने के लिए न केवल यह आवश्यक है कि हमें शास्त्र की विषय-वस्तु के विषय में जानकारी और ज्ञान हो, वरन् इसका यह भी अर्थ है कि हमें शास्त्र से जो कुछ भी सीखना है, उसकी सुसंगत समझ होनी चाहिए; जो असंगत है वह समझ से परे है और जो समझ से परे है उसे समझा ही नहीं जा सकता।

पिछले अध्याय में हमने ऊपरी कक्ष में यीशु के प्रकट होने पर विचार किया था। इसी विषय पर विचार करने के लिए एक और पाठ उपलब्ध है 1 यूहन्ना 5:16: "यदि कोई अपने भाई को ऐसा पाप करते देखे जिसका परिणाम मृत्यु न हो, तो वह प्रार्थना करे और परमेश्वर उसके कारण उन्हें जिन्होंने ऐसा पाप किया हो जिसका परिणाम मृत्यु नहीं है, जीवन देगा। ऐसा पाप तो है जिसका परिणाम मृत्यु है; मैं यह नहीं कहता कि वह इस बात के लिए निवेदन करे।" इस वचन में एक आधारभूत संदेश यह है कि यदि आप अपने भाई को पाप करते देखते हैं और वह पाप ऐसा है जिसका फल मृत्यु नहीं है, तो आपको उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए। हमें विश्वास में जीवित उन भाइयों और बहनों के लिए प्रार्थना करने का स्पष्ट प्रबोधन दिया गया है जो किसी विशेष पाप में फंस गए हैं।

परन्तु फिर यूहन्ना यह कहकर इस निर्देश को जटिल बना देता है कि एक

ऐसा पाप भी है जो मनुष्य को मृत्यु की ओर ले जाता है। वह यह परिभाषित नहीं करता कि मृत्यु की ओर ले जाने वाला वह पाप क्या है (और हम उस रहस्य को एक ओर रख देते हैं), परन्तु सम्भवतः जिन लोगों ने यह पत्र प्राप्त किया वे जानते थे कि वह पाप क्या था। क्या यूहन्ना उनसे कह रहा है कि यदि तुम अपने भाई या बहन को ऐसा पाप करते हुए देखते हो, तो उनके लिए प्रार्थना न करो? नहीं। यूहन्ना यह नहीं कहता कि तुम्हें किसी ऐसे व्यक्ति के लिए प्रार्थना करने की अनुमति नहीं दी गई है जो ऐसा पाप कर रहा है जो मृत्यु की ओर ले जाता है। वह यह कहता है: "यदि तुम अपने भाई या बहन को ऐसा पाप करते हुए देखते हो जो मृत्यु तक नहीं ले जाता, तो तुम्हें उनके लिए प्रार्थना *करनी चाहिए।* परन्तु यदि तुम उन्हें ऐसा पाप करते हुए देखते हो जो मृत्यु तक ले जाता है, तो मैं यह नहीं कहूँगा कि तुम्हें उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए।"

यदि यूहन्ना कहता है, "मैं यह नहीं कहने जा रहा हूँ कि तुम्हें *अवश्य* ऐसा करना चाहिए," तो क्या इसका अर्थ यह है कि तुम्हें ऐसा *नहीं* करना चाहिए? दूसरे शब्दों में, यदि मैं कहता हूँ कि तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, तो क्या यह, यह कहने के समान है कि तुम्हें ऐसा करने की *अनुमति नहीं* है? नहीं, हम समझते हैं कि कुछ वैकल्पिक हो सकता है। आप इसे कर सकते हैं, अथवा आप इसे *नहीं* कर सकते। "अवश्य" और "नहीं करना चाहिए" कहने में अन्तर है। एक सकारात्मक आदेश है; दूसरा स्पष्ट निषेध है। परन्तु इस विषय में, हमें उन लोगों के लिए प्रार्थना करने का सकारात्मक आदेश मिलता है जो वह पाप नहीं करते हैं जो मृत्यु की ओर ले जाता है, परन्तु इस पाठ में जो अनुपस्थित है वह उन लोगों के लिए प्रार्थना करने के विरुद्ध एक समानान्तर

पूर्ण निषेध है जो इस विशेष पाप को करते हैं। यूहन्ना ने बस इतना कहा, "मैं आपको यह नहीं बताने जा रहा हूँ कि आपको यह *अवश्य* करना चाहिए।" वरन् पाठ इसे हमारे निर्णय पर छोड़ देता है।

विचार करने के लिए एक और पाठ उपलब्ध है यूहन्ना 3:16। दूसरों के साथ परमेश्वर के सार्वभौम चुनाव पर विचार-विनिमय करते समय, लोग प्रायः उत्तर देते हैं, "परन्तु क्या बाइबल यह नहीं कहती कि परमेश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम किया कि उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया, कि जो कोई उस पर विश्वास करे, वह नाश न हो, परन्तु अनन्त जीवन पाए?" मैं कहता हूँ: "हाँ। *जो कोई* विश्वास करता है।" जो कोई ऐसा करता है, वह नाश नहीं होगा और उसे अनन्त जीवन प्राप्त होगा। यदि हम इसे तार्किक प्रस्तावों में अनुवाद करते हैं, तो हम कहेंगे कि जो कोई भी विश्वास करता है (जो एक सार्वभौमिक पुष्टि है) उसे अनन्त जीवन की प्राप्ति होगी। और, इसे नकारात्मक रूप में कहें, तो जो कोई भी अनन्त जीवन प्राप्त करता है, वह नाश नहीं होगा। विश्वास के परिणामों के सन्दर्भ में नाश और अनन्त जीवन यहाँ ध्रुवीय विपरीत हैं। जो कोई भी $A$ (विश्वास करता है) करता है, वह $B$ (नाश) नहीं होगा, वरन् उसे $C$ (अनन्त जीवन) प्राप्त होगा।

हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि यह पाठ यीशु मसीह पर विश्वास करने की हमारी क्षमता के विषय में क्या कहता है। यह क्या कहता है? निश्चित रूप से कुछ नहीं। पाठ में केवल इतना कहा गया है कि "जो कोई $A$ करेगा, उसे $C$ प्राप्त होगा और $B$ नहीं।" यह हमें इस विषय में कुछ नहीं बताता कि कौन विश्वास करेगा। यीशु ने बाद में यूहन्ना के सुसमाचार में कहा, "मेरे पास कोई नहीं आ सकता जब तक पिता जिसने मुझे भेजा उसे

अपने पास खींच न ले" (यूहन्ना 6:44)। यहाँ हमारे पास एक सार्वभौमिक नकारात्मक उपलब्ध है जो क्षमता का वर्णन करता है। कोई भी व्यक्ति यीशु के पास आने की क्षमता नहीं रखता जब तक कि परमेश्वर द्वारा कोई कार्यवाही पूरी न की जाए। कुछ लोग कहते हैं कि यूहन्ना 3:16 में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति परमेश्वर द्वारा किसी भी कार्य के द्वारा अथवा उसके अतिरिक्त यीशु के पास आ सकता है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि यूहन्ना 3:16 उसी अध्याय में उपस्थित है जहाँ यीशु ने कहा कि जब तक कोई व्यक्ति फिर से जन्म नहीं लेता, जल और आत्मा से जन्म नहीं लेता, वह परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता।

जैसे-जैसे हम मसीही मन के अपने अध्ययन के अन्त के निकट पहुँचते हैं, हम पाप के मानसिक प्रभाव *(noetic effect)* नामक एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को देखना चाहते हैं। *Noetic नोएटिक* शब्द (मानसिक) ग्रीक शब्द *नूस (nous)* से उद्धृत हुआ है, जिसका अर्थ है "मन।" इसलिए पाप का मानसिक प्रभाव वह प्रभाव है जो पतन अथवा पाप का हमारे मन पर पड़ता है। रोमियों 1 में, पौलुस हमें बताता है कि कैसे हमारे मूर्ख मन अंधकारमय हो सकते हैं। ऐतिहासिक धर्मविज्ञान यह निष्कर्ष उद्धृत करता है कि सम्पूर्ण मानव व्यक्ति, सभी संकायों में, मानव स्वभाव के भ्रष्टाचार से नष्ट हो गया है। पाप के कारण हमारे शरीर मृत हो जाते हैं। हमारी आँखों पर पाप के प्रभाव का अर्थ यह होता है कि जैसे-जैसे हम वृद्ध होते हैं, हमारी आँखें धुंधली होती जाती हैं। हम सुनने की अपनी क्षमता खो देंगे। हम यह भी जानते हैं कि मानवीय इच्छा नैतिक बन्धन की स्थिति में है, यह आत्मा की बुरी इच्छाओं और आवेगों की बन्दी है।

इतना ही नहीं, वरन् पापी हृदय ऐसा है कि मनुष्य स्वभाव से ही अपने

विचार में परमेश्वर को स्थापित नहीं रखेगा। हमारे पास एक निंदनीय मन है, एक ऐसी मानसिकता जिसके द्वारा हम परमेश्वर की मधुरता के विरुद्ध पूर्वाग्रही हैं। हम जानते हैं कि पूर्वाग्रह किस प्रकार से विचार को विकृत कर सकता है। जब हम अपने पूर्वाग्रह से अन्धे हो जाते हैं तो हमें स्पष्ट विचारों को समझना कठिन लगता है। यहाँ तक कि हमारे सोचने की क्षमता भी पतन के कारण बहुत दुर्बल हो गई है।

तथापि, यद्यपि हम पाप में पतित या पथभ्रष्ट हैं, फिर भी हमारे पास सोचने और चुनाव करने की क्षमता है। हमारे पास अभी भी चुनाव करने की क्षमता है। हमारे पास अभी भी इच्छाशक्ति है। हम अभी भी विचार कर सकते हैं। निस्सन्देह, हम सभी से चूक होने की सम्भावना है। परन्तु एक व्यक्ति को महान गणितज्ञ बनने के लिए मसीही होने की आवश्यकता नहीं है। न ही एक व्यक्ति को विशेषज्ञ तर्कशास्त्री बनने के लिए मसीही होने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि तार्किक रीति से तर्क करने का कौशल ऐसी वस्तु नहीं है जो जन्मजात हो, यदि आपके पास हो अथवा न हो। व्यवस्थित, तार्किक, ठोस और निश्चयात्मक रीति से तर्क करने का कौशल सीखा और विकसित किया जा सकता है।

मसीही होने के नाते, हम अत्यंत स्पष्टता और तार्किकता के साथ विचार करना चाहते हैं। अनुशासन के विषय में, तर्क के प्राथमिक सिद्धान्तों का अध्ययन करना और उनमें महारत प्राप्त करना हमारे लिए बहुत लाभदायक होगा जिससे हम एक सीमा तक अपने विचारों पर पाप के विनाश को दूर कर

सकें। जब तक पाप हमारे अन्दर निहित है, हम अपने तर्क में कभी भी परिपूर्ण नहीं बन सकते। पाप हमें परमेश्वर के नियम के विरुद्ध पूर्वाग्रहित करता है और हमें परमेश्वर की सत्यता की इन मौलिक विकृतियों को दूर करने के लिए संघर्ष करना होगा। परन्तु यदि हम परमेश्वर से न केवल अपने पूरे हृदय से वरन् अपने पूरे मन से प्रेम करते हैं और हम अपने मन को उसे सौंप देते हैं और अपने मन को उसके लिए समर्पित कर देते हैं, तो हम उसके वचन के पास आने पर यथासंभव सटीक होने के अपने प्रयासों में दृढ़ होंगे।

पवित्रशास्त्र हमें उन्हें खोजने, उन्हें ध्यान से पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। हमें परमेश्वर के जीवित वचन के फव्वारे से गहराई से पान करना है। प्रिय मसीही, आपको एक मसीही के रूप में विचार करने के लिए बुलाया गया है। हमें ख्रीष्ट के मन का अनुसरण करना है। हमारे प्रभु की पूर्ण मनुष्यता का एक भाग यह है कि नासरत के यीशु ने कभी भी कोई अवैध निष्कर्ष नहीं निकाला। वह कभी भी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे जो आधारों द्वारा अनुचित थे। उनके विचार पूर्णतया स्पष्ट थे। उनके विचार सुसंगत थे। उनके विचार शुद्ध, दोष-रहित थे। संसार ने कभी भी ऐसे उचित विचारों का अनुभव नहीं किया जैसा कि ख्रीष्ट के मन में प्रकट हुआ था।

जैसा कि हमें अपने प्रभु का अनुकरण करने के लिए बुलाया गया है, मैं आपसे विनती करता हूँ कि अपने जीवन में उसे अपने पूरे मन से प्रेम करना एक मुख्य और गम्भीर कार्य बना लें।

# लेखक के विषय में

**डॉ. आर.सी. स्प्रोल** लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक, सेंट एंड्रयूज़ चैपल, सैनफोर्ड, फ्लोरिडा के संस्थापक पास्टर और रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष और *टेबलटॉक* पत्रिका के कार्यकारी सम्पादक थे। उनका रेडियो कार्यक्रम *रिन्यूइंग योर माइंड* अभी भी संसार भर के सैकड़ों रेडियो स्टेशनों पर प्रतिदिन प्रसारित किया जाता है और ऑनलाइन भी सुना जा सकता है। वे एक सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें द *होलीनेस ऑफ गॉड, चोज़ेन बाय गॉड* और *सभी हैं ईश्वरविज्ञानी* सम्मिलित हैं। उन्हें संसार भर में पवित्रशास्त्र की अचूकता की सुस्पष्ट रक्षा तथा परमेश्वर के लोगों के लिए उसके वचन पर दृढ़ विश्वास के साथ खड़े होने की आवश्यकता के लिए पहचाना गया था।

लिग्निएर लाइब्रेरी

लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ एक अन्तर्राष्ट्रीय मसीही शिष्यता संस्था है जिसको डॉ आर.सी. स्प्रोल ने 1971 में संस्थापित किया था जिससे कि जितने अधिक लोगों तक सम्भव हो सके उन तक परमेश्वर की पवित्रता को उसकी पूर्णता में उद्घोषित करें, शिक्षा दें और रक्षा करें। लिग्निएर लाइब्रेरी की मोहर सम्पूर्ण विश्व तथा कई भाषाओं में विश्वसनीयता का चिह्न बन गयी है।

महान् आदेश द्वारा प्रेरित होकर, लिग्निएर, शिष्यता के संसाधन को छपे हुए तथा डिजिटल माध्यम से बाँटता है। विश्वसनीय पुस्तक, लेख और वीडियो शिक्षा श्रृंखला चालीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित या रिकॉर्ड किए जा रहे हैं। हमारी अभिलाषा है यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया का समर्थन करें मसीहियों की यह जानने में सहायता करने के द्वारा कि वे क्या विश्वास करते हैं, वे क्यों विश्वास करते हैं, उन्हें उसके अनुसार कैसे जीना चाहिए और उसे कैसे बाँटना चाहिए।

HI.LIGONIER.ORG

# मार्ग सत्य जीवन

**ऑडियो-वीडियो:** भारत में कलीसिया की उन्नति के लिए हिन्दी में प्रचार एवं लेखों की ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग उपलब्ध हैं। इसका उद्देश्य है कि विश्वासी तथा कलीसियाएँ सुसमाचार एवं वचन की समझ में बढ़ें और विश्वास में परिपक्व हो सकें। आप इन्हें यूट्यूब youtube.com/@MargSatyaJeevan पर देख व सुन सकते हैं।

**बाइबलीय लेख:** margsatyajeevan.com/articles/ पर हिन्दी में खरी शिक्षा पर आधारित लेख उपलब्ध हैं। ये लेख वचन की मुख्य शिक्षाओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं जिससे कि एक नया विश्वासी भी खरी शिक्षा के ज्ञान में वृद्धि करे और पवित्रता का जीवन जिए।

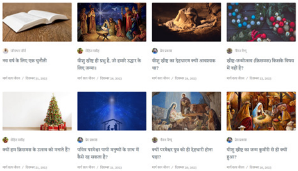

**बाइबलीय पुस्तकें:** हिन्दी में विश्वासयोग्य बाइबलीय पुस्तकों का अभाव होने के कारण, आपके लिए वचन पर आधारित पुस्तकों को उपलब्ध कराया गया है। आप margsatyajeevan.com/books/ पर कुछ योगदान देने के द्वारा पुस्तकों को प्राप्त कर सकते हैं। हमारी आशा है कि इनके द्वारा आप परमेश्वर के गुणों को देखेंगे, कलीसिया के महत्व को समझेंगे और ख्रीष्ट की समानता में बढ़ेंगे।

## अधिक जानकारी के लिए:

*फोन नम्बर: 9696110134*
*https://margsatyajeevan.com*
*ई-मेल: enquirymsj@gmail.com*

*यूट्यूब: Marg Satya Jeevan*
*इंस्टाग्राम: @margsatyajeevan*
*facebook.com/margsatyajeevann*

# सत्य वचन सेमिनरी

## पास्टरीय सेवकाई के लिए प्रशिक्षण

वर्तमान समय में वचन पर आधारित कलीसियाओं की बड़ी आवश्यकता है और कलीसियाएँ वचन पर आधारित तब होंगी जब उनके अगुवे बाइबल के अनुसार योग्य तथा उपयुक्त रीति से प्रशिक्षित होंगे। सत्य वचन सेमिनरी इस उद्देश्य के लिए अस्तित्व में है कि पुरुषों को बाइबल के ज्ञान में, स्थानीय कलीसिया की समझ में, व्यावहारिक सेवा के अनुभव में और ख्रीष्टीय चरित्र में बढ़ाने के द्वारा कलीसियाओं की सहायता करे। यह तीन वर्षीय, आवासीय कार्यक्रम है जिसमें बी.टीएच. (B.Th.) और एम.डिव. (M.Div.) स्तर की पढ़ाई होती है।

**सेमिनरी की कुछ विशेषताएँ:**

- स्थानीय कलीसिया द्वारा संचालन
- कलीसिया के पास्टरों द्वारा निर्देशन
- स्थानीय भाषाओं में सेवा का प्रोत्साहन
- योग्यता-प्राप्त प्रोफेसरों द्वारा शिक्षण
- व्यावहारिक सेवकाई करने के अवसर
- सम्मेलनों/प्रशिक्षणों में जाने के अवसर
- ईश्वरविज्ञानीय पुस्तकालय की उपलब्धता

**पाठ्यक्रम के कुछ विषय:**

- पुराने नियम का सर्वेक्षण
- नए नियम का सर्वेक्षण
- विधिवत् ईश्वरविज्ञान
- बाइबलीय ईश्वरविज्ञान
- व्याख्याशास्त्र एवं उपदेश कला
- नए नियम में पुराने नियम का उपयोग
- विभिन्न बाइबलीय पुस्तकों का अर्थनिरूपण
- कलीसियाई इतिहास
- बाइबलीय परामर्श
- आपत्तिखण्डनशास्त्र
- अन्य धर्मों का अध्ययन
- बाइबलीय मूल भाषाओं (यूनानी एवं इब्रानी) का अध्ययन

**अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:**

*+91 9450810781,*

*satyavachanseminary@gmail.com*

*www.svsem.org*

# सत्य वचन चर्च
## पास्टरीय प्रशिक्षुता (इन्टर्नशिप)

परमेश्वर के वचन के अनुरूप पास्टरों की तैयारी के लिए, बाइबल के अध्ययन के साथ-साथ, व्यावहारिक सेवकाई में अनुभव तथा अनुभवी पास्टरों द्वारा शिष्योन्नति की आवश्यकता होती है। भावी पास्टरों में निवेश करने हेतु सत्य वचन चर्च का पास्टरीय प्रशिक्षुता कार्यक्रम पुरुषों को अवसर प्रदान करता है कि वे सत्य वचन चर्च के अगुवों की देख-रेख में स्वयं को सेवकाई के लिए तैयार कर सकते हैं। प्रशिक्षु सत्य वचन चर्च के सदस्य बनते हैं, कलीसिया के अगुवों के साथ समय व्यतीत करते हैं, पुस्तकों को पढ़ते हैं और विभिन्न प्रशिक्षणों में भाग लेते हैं।

**प्रशिक्षुता की विशेषताएँ:**

- वचन के ज्ञान में बढ़ना।
- पास्टरीय सेवा को निकटता से देखना।
- कलीसिया के जीवन में सम्मिलित होना।
- स्थानीय कलीसिया के महत्व को समझना।
- कलीसियाई सेवकाई के सौभाग्यों तथा चुनौतियों को निकटता से देखना।
- व्यावहारिक सेवकाई के अवसर।
- सेवकाई में पासबानों द्वारा निर्देशन।
- उत्साहवर्धक एवं सुधारात्मक टिप्पणियाँ प्राप्त करना।
- सम्मेलनों में भाग लेने के अवसर।
- भविष्य की सेवा से सम्बन्धित सम्मति प्राप्त करना।
- सम्भवतः कलीसिया द्वारा पुष्टि प्राप्त करके सेवकाई के लिए भेजा जाना।

**अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें**

*+91 86043 09392*

# आवासीय शिष्यता-कार्यक्रम

**आवासीय शिष्यता-कार्यक्रम** सत्य वचन चर्च की एक सेवा है जिसके द्वारा भविष्य में कलीसिया के स्वास्थ्य के लिए वर्तमान में जवान भाइयों में निवेश किया जाता है। इसका उद्देश्य है कि जवान भाई 3-4 वर्षों के लिए चर्च के साथ रहकर अपनी पढ़ाई के साथ-साथ वचन के ज्ञान और परिपक्वता में बढ़ें।

**कौन भाग ले सकता है?** यह कार्यक्रम जवान ख्रीष्टीय पुरुषों के लिए है जो बारहवीं की पढ़ाई कर चुके हैं, स्नातक की पढ़ाई करना चाहते हैं, तथा जिनका परिवार और कलीसिया उनके इस कार्यक्रम में भाग लेने के समर्थन में हैं।

**लक्ष्य:** आशा है कि इस कार्यक्रम के द्वारा भाई:

i. परमेश्वर के वचन के ज्ञान और ख्रीष्टीय परिपक्वता में बढ़ेंगे।

ii. ख्रीष्टीय अगुवाई तथा कलीसियाई सेवकाई के लिए उत्साहित होंगे।

iii. अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करेंगे।

iv. व्यावहारिक प्रतिभाओं तथा योग्यताओं में बढ़ेंगे। (अंग्रेजी बोलना, कम्प्यूटर चलाना, गाड़ी चलाना)

v. व्यक्तित्व विकास तथा बौद्धिक विकास में उन्नति करेंगे।

**अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें**

*+91 9696110134*

# क्या सोचने का कोई उचित ढ़ंग है?

चाहे आपको इसका बोध हो या न हो, आप निरन्तर सोचते रहते हैं। आपके द्वारा बोले गए प्रत्येक शब्द और लिए गए प्रत्येक निर्णय उस मन से उत्पन्न होते हैं जो परमेश्वर ने आपको प्रदान किया है। परमेश्वर के अन्य सभी वरदानों की भाँति, यह वरदान भी उत्तरदायित्व के साथ आता है।

इस पुस्तिका में, डॉ. आर.सी. स्प्रोल यह स्पष्ट करते हैं कि हमारा सोचने का ढंग हमारे जीवन-निर्वाह की नींव है। जिस सृष्टिकर्ता ने हमें मन दिया है, उसी ने अपने ही मन का प्रकाशन बाइबल में किया है—और वह हमें बुलाता है कि हम उसे जानें और उसके वचन के अनुसार विचार करें।

डॉ. आर.सी. स्प्रोल द्वारा लिखी गई यह अति महत्वपूर्ण प्रश्न पुस्तिका शृंखला, मसीहियों और विचारशील जिज्ञासुओं द्वारा प्रायः पूछे जाने वाले महत्वपूर्ण प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर प्रस्तुत करती है।

**डॉ. आर.सी. स्प्रोल** लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक थे, सेंट एंड्रयूज़ चैपल, सैनफोर्ड फ्लोरिडा के संस्थापक पास्टर, और रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष थे। वे सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें *दुःख द्वारा अचम्भित* भी सम्मिलित है।

लिग्निएर लाइब्रेरी

मार्ग सत्य जीवन
ख्रीष्टीय विचारों का संग्रह

ISBN: 978-81-991107-9-3

9 788199 110793